वनस्पति वाणी

वर्ष 14 सितम्बर 2004 अंक 13

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

अर्थ स्टार - जिएस्ट्रम

पफ बोल - लाइकोपरडॉन

वनस्पति वाणी

वर्ष 14 सितम्बर 2004 अंक 13

वसुधेति च शीतेति पुण्यदेति धरेति च
नमस्ते सुभगे देवि द्रुमोऽयं वर्धतामिति

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
BOTANICAL SURVEY OF INDIA

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

इस प्रकाशन का कोई अंश निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के लिखित पुर्वानुमति के बिना पुनर्प्रवर्तित/रिट्रिवल पद्धति से भण्डारण या इलेक्ट्रानिक, मेकेनिकल फोटोकापी, रिकार्डिंग या अन्य किसी तरीके से ट्रांसमिट नहीं किया जा सकता है।

डा० एम संजप्पा	:	संरक्षक
डा० हर्ष चौधरी	:	सम्पादक
नवीन चौधरी	:	सहायक सम्पादक

वनस्पति वाणी में प्रकाशित रचनाओं की मौलिकता, प्रामाणिकता एवं व्यक्त विचारों के लिए लेखक उत्तरदायी है।

इस अंक के प्रूफ संशोधन, मुद्रण क्रम में हिन्दी एवं प्रकाशन अनुभाग के सभी कर्मचारियों ने सकिय सहयोग प्रदान किया है।

मुखपृष्ठ का चित्र : कोरिफा युटान (पामी)

विषय सूची

1.	मेहाओ वन्यजीव अभयारण्य	: देवेन्द्र कुमार सिंह, भगवती प्रसाद उनियाल व जय राम शर्मा	1
2.	जैविक प्रतिकार	: जयराम शर्मा व भगवती प्रसाद उनियाल	6
3.	''भीमाशंकर अभयारण्य यात्रा एक अविस्मरणीय अनुभव''	: मंदार दातार व पि. सत्यनारायण राव	9
4.	धार्मिक पूजन एवं उपयोगी वनस्पतियाँ	: ग्रेस सुसान्ना लाकरा, मार्सेल तिग्गा व पी. जी. दिवाकर	12
5.	प्राचीन ग्रंथों में पौधों की महिमा एवं संरक्षण	: एस एल गुप्त व एच एस पाण्डेय	23
6.	जैविक खाद	: जय राम शर्मा व भगवती प्रसाद उनियाल	26
7.	वृक्षोंका आयुर्वेद	: सुख सागर	30
8.	मौलिंग राष्ट्रीय उद्यान–एक पूर्वावलोकन	: कुमार अम्बरीष, बुरुताम व ए. के. वैश्य	33
9.	दशमूला पादप जातियों का परिचय एवं संरक्षण	: बी. के. शुक्ल व जी. पी. सिन्हा	38
10.	वन विनाश के खतरे	: आर. के. गुप्ता	42
11.	अपर सियांग जिले की वानस्पतिक विविधता	: रितेश कुमार चौधरी	45
12.	मानव के कटु वनस्पति मित्र	: हिमांशु शेखर महापात्र	48
13.	झारखंड के कुछ औषधीय पौधे	: आर० के० गुप्ता	50
14.	चेतना	: रितेश कुमार चौधरी	53
15.	थुनेर (हिमालयन-यू)–मृत्यु का वृक्ष?	: हरीश सिंह 'भुजवान'	54
16.	ये मीठे फल और सुगन्धित फूल	: भोलानाथ	57
17.	गैस्टीरोमाइसीटीज - विचित्र आकृति वाले कवकों का समूह	: दीपिका बिष्ट,जयराम शर्मा व कनाद दास	58
18.	पर्यावरण संरक्षण में मानव का कर्तव्य	: नन्दलाल तिवारी	61
19.	यह तुलसी मेरे आंगन की	: अशोक बसु	63
20.	पर्यावरण समाचार	: संजीव कुमार	64
21.	उत्तर प्रदेश एवं मध्य भारत में पायी जाने वाली बाँसों की जातियाँ	: बी० के० शुक्ल, बी० के० सिन्हा, जी० पी० सिन्हा व के० पी० सिंह	69
22.	ताड़ कुल का एक अनोखा वृक्ष–कोरिफा युटान	: अ० अ० अन्सारी व गिरिजा शंकर गिरि	77

मेहाओ वन्यजीव अभयारण्य

देवेन्द्र कुमार सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता
भगवती प्रसाद उनियाल एवं जय राम शर्मा
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून।

मेहाओ वन्यजीव अभयारण्य अरूणाचल प्रदेश राज्य के दिबांग वैली जिले के दक्षिण पूर्वी छोर पर $93^0 30$ से $93^0 45$ पूर्व देशांतर व $28^0 05$से $28^0 15$ उत्तर अक्षांश के मध्य ईदू मिशमी पर्वत शृंखला में स्थित है। इसकी स्थापना 15 दिसम्बर 1980 में की गयी थी। अभयारण्य का कुल क्षेत्रफल लगभग 281.50 वर्ग कि. मी. है तथा इसके विभिन्न भागों की समुद्र तल से ऊचाई लगभग 400 से 3568 मी. तक है। अभयारण्य की प्रमुख जलधारायें है एम्मे, इजे, इफीपानी आबा, दिफू एवं देवपानी, जोकि माई व सिंडी पर्वतों में स्थित जल संग्रहण क्षेत्रों (कैचमेंट एरियाज) से निकलती हैं। इसके अतिरिक्त अभयारण्य में चार प्राकृतिक झीलें भी हैं जिनमें से 1640 मी. की ऊँचाई पर स्थित तथा 200 हेक्टेयर क्षेत्र में फैली व लगभग 55 मी. गहरी मेहाओ झील प्रमुख हैं। यहाँ पाई जाने वाली अन्य झीलें हैं : टाकिन (6 हेक्टेयर), सैली (2.6 हेक्टेयर) एवं डिपी (10 हेक्टेयर)।

भारत सरकार के पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के अधीनस्थ भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण व भारतीय प्राणी सर्वेक्षण विभागों से सम्बद्ध कार्यकम सलाहकार समिति द्वारा सुझाये गये कार्यकम के अनुसार भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण विभाग नें मेहाओ वन्यजीव अभयारण्य के वानस्पतिक सर्वेक्षण हेतु योजना बनाई। यों तो इसमे भारतीय प्राणी सर्वेक्षण को भी भाग लेना था पर किन्हीं कारणों से वे इसमें शामिल न हो सके। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के दल में विभिन्न पादप समूहों के विशेषज्ञ के रूप में डा. के. पी. सिंह (शैवाक), डा. ए. के. बैश्या (पर्णांग), डा. जे. आर. शर्मा (कवक), व श्री बी.पी. उनियाल (पुष्पी पौधे) थे। दल के नेता डा. डी के. सिंह, जो कि हरितोदमिदों के विषेषज्ञ हैं, थे! दल के अन्य सदस्यों में पूर्वी परिमंडल, शिलांग के श्री शंकर दास, श्री मोती लाल, श्री बोजारबरूआ, श्री बर्जरी व अरूणाचल परिमंडल के श्री परमानंद, श्री शर्मा व श्री हुसैन थे। प्रारम्भिक तैयारियों के बाद दल के सदस्य दिनांक 9.11.2000 को गुवाहाटी में एकत्रित हुए व तीन जीपों में सवार होकर रोइंग के लिये रवना हुए। दल का पहला पड़ाव जोरहाट रहा। अगले दिन प्रातः यात्रा प्रारम्भ कर दूसरे पड़ाव तिनसुकिया पहुंचे। तिनसुकियां सें आगे ब्रहमपुत्र नदी

पार करनी थी। मीलों रेतीला रास्ता पार कर घाट पर पहुंचे। ये घाट राजस्थान के अस्थाई रेतील टीलों के समान ही अस्थाई होते हैं। जैसे–जैसे नदी में पानी घटता या बढ़ता है वैसे–वैसे घाट अंदर या बाहर की ओर सरकते जाते हैं। जीपों व ट्रेलरों को मोटर बोट पर चढ़ाकर सदिया घाट उत्तरे और सदिया होते हुये शांतिपुर पहुंचे। कहते हैं कि पुराने सदिया को तो ब्रहमपुत्र लील गई अब एक नया सदिया सिर उठाये खड़ा है। इस मार्ग पर शांतिपुर, अरूणाचल की सीमा पर पड़ने वाला असम का अंतिम गाँव है। यहां से उपजिला मुख्यालय रोइंग लगभग 49 किमी. की दूरी पर है। रोइंग में सैली लेक अतिथि विश्राम गृह में ठहरकर, वन्य जीव अभयारण्य की पश्चिमी सीमा की ओर स्थित ''मायोदिया पास'' व आस-पास के स्थानों का सर्वेक्षण किया। सैली लेक के आस–पास बिश्कोफिया जावानिका, टर्मिनेलिया मीरियोकार्पा, दुआबंगा ग्रेंडीफ्लोरा, सेपियम बक्काटम, स्किमा वालिचाई व फाइकस, मैकारेंगा, एलस्टोनिया, टेरोस्पर्मम आदि वंशों की जातिया हैं। बीच-बीच में ट्रेवेसिया, आर्मेटा, एंथोसिफेलस, एपोरुजा पैंडेनस, स्टर्क्युलिया आदि वंशो की जातिंयो का मिश्रण भी है। इनकी छाया में टक्का, कोस्टस, प्रइनियम, मीसा, कैलेमस आदि की जातियां है। इक्का-दुक्का जंगली केले (म्यूसा) की जातियां भी दिखाई पड़ जाते हैं। आरोही पौधों में गेंदा कुल का मिकानिया माइक्रन्था सर्वत्र छाया हुआ है। पोराना पेनिकुलेटा भी अपने सफेद फूलों के कारण दूर से ही पहचाना जाता है। मिक्सोपायरम स्माइलेसीफोलियम, सेविया पुरपुरिया व स्टीफेनिया, टोड़डेलिया, स्माइलेक्स, ट्राइकोसेन्थस आदि वंशों की जातियां अन्य आरोही पौधे हैं। शाकीय पौधों में स्पाइलेन्थस, टोरेनिया, वर्नोनिया, कोस्टस, बालेरिया, टेफ्रेसिया, ऑक्सीस्पोरा, जिरार्डीनिया आदि वंशों की जातियां प्रमुख हैं। ऐरेसीकुल के पौधे भी साधारणतया दिखाई पड़ जाते हैं। घासों में सिर्टोकोक्कम, ऑप्लिसमेनस, डिजिटेरिया, सिटेरिया, एराग्रोस्टिस आदि वंशो की जातियां हैं पर उलझी लटों की तरह गुंथी सेंटोथेका लप्पेसिया दूर से ही ध्यान आकर्षित करती हैं।

सैली लेक से तिवारी गांव होते हुए सड़क ''मायोदिया पास''की ओर निकलती हैं। रास्तें में टर्मिनेलिया मीरियोकार्पा, गायनोकार्डिया ऑडोरेटा, साउराविया नेपालेसिस, ट्रेमा ओरियंटेलिस, बोहमेरिया पेंडुला व अल्बीजिया वंश की जातियों का मिश्रण हैं। अरालियेसी कुल के पौधों का भी अच्छा प्रतिनिधित्व है। केले की जंगली जातियां भी हैं। झाडियों में हाइड्रेंजिया, फ्लोगाकेंथस कर्वीफ्लोरस व एकेन्थेसी कुल की एक जाति निचले भाग में बहुतायत से पाई जाती है। पॉलीगोनम, ऑक्सीस्पोरा, उल्मस, वर्नोनिया, बुडलेजा, मेलास्टोमा, आदि वंशो की क्षुपीय जातियां हैं। तिवारी गाँव के पास पर्णांगों (ट्रीफर्न) का झुरमुट अपने आप में अनूठा हैं। थनबर्जिया कॉक्सीनिया, ट्राइप्टेरोस्पर्मम वाल्यूवाइल, स्ट्रेप्टोलीरियॉन बाल्युवाइल, सेनेसियो व मटर कुल की जातियां आरोही के रूप में स्वयं को स्थापित किये हुए हैं। ''मायोदिया पास'' की ओर आगे बढ़नेपर गाउल्थेरिया

की जाति काफी संख्या में दिखाई पड़ती है, कहीं कहीं पॉलीगोनम व हाइड्रोकाटाइल की जातियों का मिश्रण दूर-दूर तक फैला है। दर्रे के आस-पास बांसों का राज्य है। ढलानों में खुले स्थानों पर कहीं-कहीं बुडलेजा के झाड़ीनुमा पेड़ व सिरसियम की पेड़नुमा जाति के दर्शन भी हो जाते है। बांसों की छाया में मिशमी तीता (कॉप्टिस तीता) के कुछ छोटे-छोटे पौधे छितरे दिखाई पड़े। ''पास'' से कुछ आगे भू-स्खलन से एकत्रित रेतीली मिट्टी पर लायकोपोडियम तिबेतिकम नामक पर्णांग की जाति अपने लाल रंग के कारण अलग ही दिखाई दे रही थी। वृक्षों में लिथोकार्पस, कुएरकस, शेफलेरा, मैग्नोलिया व लाउरेसी कुल के पेड़ो का मिश्रण है। चमकीली पतियों वाली रूबस की जातियां तथा मोटी चर्मिल पत्तियों वाली गाउल्थेरिया जाति का अलग ही आकर्षण है।

मेहाओं अभयारण्य का नाम मेहाओं झील पर आधारित है। इस भाग में जाने के लिये वापिस रोइंग आना पड़ता है। स्थानीय निवासियों के लिये यह झील पर्यटक स्थल के समान है। आम आदमी के लिये इस स्थल की यात्रा कठिन हो सकती है पर यहां के लोग जंगली मृगों की भांति कूदते फाँदते आराम से यह मार्ग तय करते है। रोइंग वापिस आकर आगे की यात्रा के लिये आवश्यक प्रबंध किये। चूंकि यात्रा पैदल की थी अतः अब तक एकत्रित किये गये नमूनों व गाडियों को रोइंग में छोड़ना पड़ा। रोइंग से मेहाओं झील के लिये दो रास्ते हैं, एक देवपानी नदी की ओर से व दूसरा अभांगो होकर। देवपानी वाला रास्ता थोडा कठिन था अतः अभांगो होकर जाना निश्चित हुआ। गाड़ियां हमें अभांगो तक छोड़कर वापिस लौट गई। दल अपने लश्कर के साथ आगे बढ़ा। चढ़ाई का रास्ता था अतः रूक-रूक कर चलना पड़ रहा था। पथ प्रदर्शक के रूप में वन विभाग के श्री चौधरी व दो अन्यकार्यकर्ता थे। पॉलीएल्थिया, साइजीजियम, साउराबिया, क्वेरकस आदि के मिश्रित वनों के बीच होते हुए ''अंडा कैम्प'' तक पहुंचे। झाड़ियों के रूप में यंहा एकेन्थेसी कुल (शायद स्ट्रोबिलैन्थस) व रूबिएसी कुल की एक जाति बहुतायत में है। आरोही के रूप में पाइपर वंश की जातियां छितरी हैं। अंडा कैम्प से आगे ऊँचाई पर ढलानों में बैलेनोफोरा डायोका है। इलेटोस्टेमा, ऑफियोराइजा, डैफ्ने आदि कुछ अन्य साधारणतया पाईजाने वाली जातियां हैं। कहीं-कहीं ताड़ कुल के सदस्य भी दिखाई पड़ जाते हैं। चढ़ाई खत्म होते ही बांसों से परिपूर्ण समतल इलाका आ गया था। हमें बताया गया था कि समतल इलाके में थोड़ा चलने के बाद ढलान शुरू हो जाती है जो मेहाओ झील पर समाप्त हो जाती है। समतल इलाका आते ही दल के तीन सदस्य अति उत्साह में आगे बढ़ गये परन्तु ढलान का कहीं अता पता नही था। इस क्षेत्र में चार बजे ही रात पंख पसारने लगती हैं। एक तो अनजान जंगल और ऊपर से अंधेरा। रास्ता भी ऐसा कि लकीर सा दिखाई पड़ रहा था। कहीं–कहीं तो गिरे पेड़ोः के तनों पर काटकर पावः रखने लायक स्थान बनाया गया था। जरा सी आहट व किसी हिंसक जानवर की कल्पना मात्र ही रोंगटे खड़े कर देती थी। आखिर गिरे हुए सूखे बांस एकत्रित कर

आग जलाई व पीछे से आते दल के अन्य सदस्यों की प्रतीक्षा करने लगे। उनकी भी अपनी समस्या थी। दल के एक सदस्य का अचानक स्वास्थ्य बिगड़ गया था और चलने में परेशानी महसूस कर रहे थे। अब तक रात के आठ बज चुके थे और हम जंगल में हो थे। थोड़ी देर देर बाद दल के सदस्य आ गये और हमारी जान में जान आई। स्थानीय कुलियों के भरोसे यात्रा जारी रखी। इसके अतिरिक्त चारा भी नहीं था। टार्च लाइट भी पर्याप्त नहीं थी और पेट्रोमेक्स ऐन मौके पर दगा दे गया था। काम आया तो यहाँ के जनजीवन में रचा बसा बांस। हम में से कुछ के हाथों में बांस की लाठियां थी। कुलियों ने उन्हें काटा, पेट्रोमेक्स से तेल निकालकर खोखलों में भरा और सूतली की बत्ती बनाकर प्रकाश का इंतजाम किया। लगभग 10 बजे हम गतंव्य पर पहुंचे। सभी थक कर चूर थे, ऐसे में भोजन पानी की व्यवस्था करता तो कौन। चाय पीकर रात बिताई। सुबह दूर से आती हुलाक गिब्बनों को आवाजों ने हमारा स्वागत किया। सुबह की धूप में चमकता झील का वनस्पति विहीन, नीला पानी अद्‌भुत दृश्य प्रस्तुत कर रहा था। उस पार म्यूसा की जंगली जाति अपना परचम फहरा रही थी। बड़ी झील के पास ही एक छोटी झील भी है। उस तरफ से ही कार्य प्रारम्भ करने की योजना बनी।

झील के आस पास के जंगलों में *इलियोकार्पस, साउराविया, कुएरकस, साइजीजियम, पॉलीएल्थिया, मैकारेंगा, बेल्शमीडिया, क्रिप्टोकेरिया, हेप्टाप्ल्यूरम, ट्रेवेसिया,* आदि वंशों की जातियों का मिश्रण है। कहीं कहीं *एक्सबकलैंडिया पॉपुलनिया* के पेड़ भी हैं। इनकी छाया में *इलेटोस्टेमा* व *स्ट्रोबिलैन्थस* बहुतायत में हैं। कुछ वर्षो पूर्व वर्णित जाति *गाउल्थेरिया शेशागिरियाना* भी एक दो स्थानों पर दिखाई पड़ी। विरल आर्किड *सिम्बीडियम काकालियेर* व *ईरिया, कथेरीनिया, डेंड्रोबियम, ऑटोसिलस* भी यहाँ है। मृतोपजीवी आर्किड वंश गेलियोला की जाति भी एक दो स्थानों पर दिखाई पड़ी। अन्य साधारणतया पाई जानेवाली जातियों में *पॉलीगोनेटम, अल्पीनिया, एम्बीलिया, मेडीनिल्ला, गार्डनेरिया, ऑक्सीस्पोरा, पीलिया* आदि वंशों की जातियां हैं। *एरिस्टोलिकिया ग्रिफिथाइ* भी दिखाई पड़ी पर केवल एक स्थान पर। पेड़ोंपर उपरिरोही के रूप में *वैक्सीनियम* की जाति भी यदा कदा दर्शन दे देती है।

जैसी कि योजना थी, लौटती यात्रा देवपानी नदी की ओर वाले रास्ते से करनी थी। रास्ता उतराई का था, पर कठिन। कहीं तो पेड़ लाघंने पड रहे थे और कहीं मिट्‌टी युक्त ढलान पर फिसलना पड़ रहा था। इस यात्रा का मुख्य आकर्षण रहा रेफ्लीसियेसी कुल का विरल परजीवी सैप्रिया हिमालयाना जो कि एक ही स्थान के आस पास छितरा मिला। अन्य जातियां वहीं हैं जो कि झील के आस पास हैं। कहने को तो मेहाओं झील और रोइंग के बीच की दूरी 15 किमी. है पर सुबह 8.00 बजे शुरु की गई यात्रा शाम के 5.30 पर समाप्त हुई।

यात्रा भले ही कठिन थी पर परिणाम सुखद

निकले। अपुष्पी पौधों से लेकर पुष्पी पौधों के एकत्रित किये गये नमूने यात्रा की थकान भुला देने वाले थे। कहना न होगा कि अरूणाचल के वनों में अपार वानस्पतिक विविधता है जिसका अध्ययन आवश्यक है। सौभाग्य से सैली लेक के विश्राम गृह में दल के कुछ सदस्यों की भेंट मुख्यमंत्री श्री मुकुट मीठी से हो गयी। दल के कार्यो से वे अत्यंत प्रभावित हुए जो हमारी संतुष्टि का दूसरा कारण था।

अभयारण्य में बाघ, हाथी, भालू, गौर, ऊदबिलाव, स्तनधारियों की लगभग 42 जातियां, पक्षियों की लगभग 60 जातियां, राज नाग व अजगर सहित सर्पो की 12 जातियां। छिपकलियों तथा मेंढकों की 5-5 जातियां तथा कीड़ों, मकोड़ों की लगभग 42 जातियां पाई जाती हैं। इनके अतिरिक्त यहां की जलधाराओं में महाशीर तथा कार्प सहित मछलियों की भी अनेक किस्में पाई जाती हैं।

इस अभयारण्य के अन्दर कोकोन, अंबांगो, इन्जुनों, सिमारी तथा बालेक गाँव स्थित हैं जिनकी कुल आबादी लगभग 870 हैं। इन ग्रामवासियों की अपनी दिन-प्रतिदिन की आवश्यकतापूर्ति हेतु अभयारण्य के जैविक स्रोतों पर निर्भर रहने के कारण यहाँ की अनेक समस्यायें भी हैं।

जैविक प्रतिकार

जयराम शर्मा व भगवती प्रसाद उनियाल
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून।

अत्यधिक रसायनों के कारण पर्यावरण व पारिस्थितिक तंत्र का काफी ह्रास हो रहा है। दूषित पारिस्थितिक तंत्रके सुधार की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है उन अवयवों को पर्यावरण से हटाना जिनके कारण प्रदूषण बढ़ रहा है। पर्यावरण में रासायनिक प्रदूषण, औद्योगीकरण के फलस्वरूप विसर्जित अनगिनत रसायनों का अनचाहा परिणाम है। इनमें से कुछ की लगातार उपस्थिति व उनका विषैलापन पर्यावरण को गंभीर क्षति पहुंचा रहा है। ऐसे कुछ प्रदूषक निम्न हैं।

1. **क्लोरीनेटेड घोलक (द्रावक)** : भूगर्भ स्थित पानी को प्रदूषित करने वाले कार्बन टैट्राक्लोराइड, आदि।

2. **क्लोरीनेटेड एरोमेटिक्स** : भारी अनुभार वाले पदार्थ जो न तो आसानी से भूगर्भ स्थित पानी में रिसते हैं और न ही जैविक कियाओं से नष्ट होते हैं जैसे क्लोरीनेटेड बेंजीन्स, आदि।

3. **गैसोलीन के योगिक** : भूगर्भीय पानी.में घुलनशील व जैविक क्रियाओं से प्रभावित होने वाले जैसे बेंजीन, टोल्यून, जाइलीन, आदि।

4.**नाइट्रोएरोमेटिक्स व अन्य विस्फोटक** : आसानी से नष्ट न होने वाले जैसे टी. एन. टी. आर. डी. एक्स., नाइट्रोफिनोल, आदि।

5. **बहुकेन्द्रक एरोमेटिक हाइड्रोकार्बन्स** : व्यापक व गंभीर प्रदूषण कारक, जिनमें से कुछ जैविक प्रतिक्रिया रोधी व कैंसर के जनक हैं जैसे पाइरीन, आदि।

6. **धातु** : भारी धातु, रासायनिक प्रदूषण के मुख्य कारण जैसे पारा, सीसा, आदि।

7. **अन्य** : जैवनाशक, ईथर, कीटोन, गंधक के रासायनिक यौगिक।

भारी औद्योगीकरण, फैक्टरियों से रसायनों का अनियंत्रित प्रवाह, गलाकर धातुओं को अलग करने की प्रकिया (स्मेल्टिंग) बिजली द्वारा धातुओं का

चढ़ाना (इलैक्ट्रोप्लेटिंग), चमड़ा उद्योग, मोटर गाड़ियों से सीसे इत्यादि का विसर्जन इत्यादि कारणों से पर्यावरण में भारी धातुओं की मात्रा दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। इस ग्रह को साफ व हरा भरा, प्रदूषण मुक्त व जीवन यापन हेतु सुरक्षित रखने के लिये प्रतीक्षा है ऐसे उपायों की जो आसान व सुरक्षित हो तथा जिनमें पौधों व जीवाणुओं का उपयोग संभव हो। पौधों व जीवाणुओं की भारी धातुओं को स्वयं में समाहित करनेकी क्षमता सुविदित है। पिछले कुछ दशकों में उनके इसी गुण में पर्यावरण शुद्धिकारक की संभावनायें खोजी जा रही हैं। पानी या मिट्टी को भारी धातुओं से एसे उपायों द्वारा मुक्त करना जिनमें पौधों व जीवाणुओं का उपयोग किया जाता हो, ''जैविक प्रतिकार'' कहलाता है।

जैविक साधनों, विशेषकर माइकोबियल, का उपयोग यांत्रिक विधियों की अपेक्षा कम खर्चीला, होता है तथा इसके निम्न अतिरिक्त लाभ भी है।

1. जैविक प्रतिकारों का उपयोग स्थान विशेष (यथास्थाने) पर किया जा सकता है।

2. जैविक प्रतिकारी प्रदूषण की कीमत पर ही पलते-बढ़ते हैं जिससे प्रतिकारी क्रिया बढ़ती रहती है। जैविक प्रतिकारक निम्न प्रकार से कार्य कर सकते हैं।

1. **एक्स सेल्यूलर पॉलीमर्स** (Excellular Polymers) : इस विधि से भारी धातुओं को हटाने पर काफी शोध हुआ है। इसमें भारी धातु पॉलीमर के जाल में फंस जाती है तथा उसके घुलनशील तत्व पॉलीमर में मौजूद चार्जड अवयवों के प्रभाव में आकर तलछट के रूप में ऊपर आ जाते हैं। ध्यानदेने योग्य बात यह है कि जीवाणुओं द्वरा विसर्जित पॉलीसेकराइड्स की बनावट अलग अलग होती है, अतः उनकी धातुओं को अलग करने की क्षमता भी भिन्न होती है। यह विधि उसी स्थिति में अधिक प्रभावी होती है जबकि प्रदूषित पानी में भारी धातुओं की मात्रा कम हो।

2. **सेल सर्फेस एक्यूमुलेशन** (Cell surface accumulation) : यह विधि प्रतिकारक की कोशिका भित्ति व भारी धातु के गतिमान परमाणुओं के बीच प्रतिक्रिया पर आधारित है। जीवाणुओं की कोशिका भित्ति में फॉस्फोडायस्टर, कार्बोक्सिल व अमाइन आदि के सक्रिय समूह होते हैं। देखा गया है कि समुद्री पानी में उपस्थित रेडियोन्युक्लाइड्स आदि प्रदूषकों को समुद्र में ही मौजूद जीवाणुओं द्वारा संग्रहित कर लिया जाता है। कई जीवाणुओं (Bacillus subtilis), यीस्ट (Saccharomyces cerevisiae) व तन्तुनुमा कवकों (Rhizopus arrhizus, Ganoderma lucidum) में धातुओं को भारी मात्रा में संचित करने की क्षमता होती है। उदाहरणत: Rhizopus अपने भार के चौथाई तक यूरेनियम जैसी भारी धातु संचित कर सकता है। चूँकि कोशिका सतह पर धातुओं का संग्रह सकारात्मक व नकारात्मक गतिमान परमाणुओं की प्रतिकिया है अतः इसकी सफलता पर्यावरण की परिस्थिति पर निर्भर करती है।

जीवाणुओं की कोशिका भित्ति में उपस्थित प्रकिण्वों (इन्जाइन्स) की प्रतिक्रि या से भी कुछ भारी धातुओं जैसे सीसा, कैडमियम को तलछट के रूप में अलग किया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर Citobacter नामक जीवाणु की कोशिकाभित्ति में Alkaline phosphate होने के कारण कार्वनिक फॉस्फेट अकार्वनिक फास्फेट में परिवर्तित हो जाता है जो भारी धातुओं से मिलकर अघुलनशील फॉस्फेट बना देता है। कुछ अन्य जीवाणुओं में भी इसी प्रकार की क्रिया के फलस्वरूप सल्फाइड को तलछट के रूप में अलग करने की क्षमता होती है।

3. **जैविक संग्रहण** (Bioaccumulation) : जैविक संग्रहण या फाइटोरेमिडियेशन (Phytoremidiation) अपेक्षाकृत एक नई विधिहै जिसे मिट्टी या पानी में मौजूद भारी धातुओं से छुटकारा पाने के लिये प्रयुक्त किया जा रहा है। पाया गया है कि जलकुम्भी (Eichhornia) व Phragmites जैसे पौधे पारा, जस्ता, तांबा आदि धातुओं को अपने आप में संग्रहित कर सकते हैं। हाल ही में, कई अन्य पुष्पी पौधों में भी इस गुण को खोजा गया है। Sebertia acuminata (निकिल) Atriplex Haplopappus (दोनों सिलिनियम) व Haumaniastrum katangense (ताबा) ऐसे कुछ उदाहरण हैं। इस प्रकार के पौधे एक ओर तो जल व मिट्टी की शुद्धि करते हैं व दूसरी ओर अपने में संचित धातुओं को अन्य उपयोगों में प्रयुक्त करने हेतु निस्सारण की सुविधा प्रदान करते है। शीतोष्ण जलवायु में सरसों कुल (Brassicaceae) के पौधे व उष्ण जलवायु में (Euphorbiaceae) कुल के ऐसे पौधे प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं।

नई खोजें : हाल ही में इस दिशा में किये गये प्रयासों के फलस्वरूप कई अत्यधिक लाभकारी तकनीकें प्रकाश में आई हैं। यद्यपि इन तकनीकों के लिये अधिक सुविधाओं व प्रबंधन की आवश्यकता है तथापि भविष्य में इन से ही अधिक सफलता की आशा की जा रही है। इस प्रकार के कुछ उदाहरण निम्न हैं।

Anaerobic metabolism : जीवाणु जो ऑक्सीजन की अनुपस्थितिमें टोल्वीन, जाइलीन इत्यादि पर जीवनयापन कर सकते हैं, खोज लिये गये हैं। इन खोजों के फलस्वरूप, गैसोलीन के योगिक के क्षरण में ऑक्सीजन की उपस्थिति, जो अब तक निर्णायक थी आवश्यक नहीं रहेगी।

Chlororespiration : इस प्रकार के जीवाणु भी खोजे जा चुके हैं जिनकी श्वसन क्रिया भिन्न है। ये अपनी वृद्धि के लिये क्लोरीन युक्त आधार को क्लोरीन रहित कर उसी पर जीवन यापन करते हैं। जैविक प्रतिकारकों की दिशा में की गई यह खोज पिछले दशक की महत्वपूर्ण खोज मानी जा रही हैं।

अन्य : क्लोरीनेटेड एरोमेटिक्स का बढ़ता क्षरण, Pseudomonas के ऐसे प्रभेदों की खोज जो क्लोरोफॉर्म पैदा किये बिना कार्बन टैट्राक्लोराइड का क्षरण करते हैं, नाइट्रोएरोमेटिक्स से नाइट्रोजन समूह को अलग करने वाले जीवाणुओं की खोज इत्यादि।

''भीमाशंकर अभयारण्य यात्रा : एक अविस्मरणीय अनुभव''

मंदार दातार और पि. सत्यनारायण राव
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पुणे

महाराष्ट्र के पुणे और ठाणे जिले में पश्चिम घाट की पहाडियों पर स्थित है भीमाशंकर वन्यजीव अभयारण्य। पुणे से करीबन 130 कि.मी. की दूरी पर यह विख्यात पर्यटन स्थल है, जिसे हर साल कई लाख भक्तगण देखने के लिये आते है। भगवान शिवजी के बारह ज्योतिर्लिगों में से एक है भीमाशंकर। साथ ही यहाँका जंगल अत्यंत समृद्ध और घना है जिसके फलस्वरूप इस क्षेत्र को सन् 1985 में अभयारण्य दर्जा दिया गया।

भीमाशंकर अक्षांश 19'' 11 19 और देशांतर 73.31से 73.37E के दरम्यान स्थित है। अभयारण्य लगभग 130.78 वर्ग कि.मी. में फैला हुआ है। सागरतल से इसकी उँचाई लगभग 1000 मीटर है। अभयारण्य के पश्चिमी भाग में ये उँचाई 200-600 मीटर है। यहाँ की सबसे महत्वपूर्ण प्रजाति है जायंट स्कीवीरल (रँट्यूफा इंडीका उपजाति एलफिन्स्टोनी) यह महाराष्ट्र राज्य का चिन्ह प्राणी या राज्य प्राणी होने के कारण महत्व रखता हैं।

वैशाख मास की पूर्णिमा की रात जिसे आम तौर पर बुद्ध पूर्णिमा कहते है, उस रात में महाराष्ट्र के अधिकांश संरक्षित प्रदेशोमें सेन्सस या प्राणीगणना होती है। प्राणीगणना के लिये यह दिन बिल्कुल उचित है क्योंकि आम तौर पर मई का मास होने के कारण जंगल के बहुतांश नदी, झरने या तालाब सूख जाते है और जंगली प्राणियों के लिये सिर्फ बचे हुए पानी के कुछ स्रोत ही रहते है जहाँपर वो पानी पीने जा सकते हैं और इस दौरान हम अगर उस जलस्रोतके आसपास बैठे तो चाँदनी रात में हम पानी पीने के लिये आये जानवर देख सक्ते हैं। इसलिये सेन्सस या प्राणीगणना को बुध्द पूर्णिमा के दिन ही किया जाता हैं।

हमे भी इस साल 2004 बुध्द पूर्णिमा के अवसर पर भीमाशंकर प्राणीगणना के लिये जाने का मौका मिला। यह अनुभव हमारें जीवन के अत्यंत दुर्लभ अनुभवोमें से एक था इसपर हमें जराभी संदेह नहीं। भीमाशंकर वन्य जीव अभयारण्य में पाए जानें वाले पशुओं में मुख्य हैं, सांबर, जंगली सुअर तेंदुआ

जिसे स्थानीक भाषा में ''बिबट्या'' कहते है, सीवेट्, हनुमान लंगूर और जायंट स्क्वीरल है। बहुत उंचे पेडों पर जायंट स्क्वीरल के घर रहते हैं। एक ही छलांग में यह प्राणी करीबन 20 फीट की दूरी तय कर सकता है। एकसाथ कई घर होने के कारण यह प्राणी आपत्तकालीन परिस्थितियों में किसी भी एक घर का आश्रय ले सकता है। भीमाशंकर अभयारण्य के जिस प्रदेश में बहुत घना जंगल हैं वहां ये प्राणी पाया जाता हैं। उसका शरीर तपकीरी-लाल रंगका होने के कारण हम इसे आसानी से देख सकते है। मार्च-एप्रिल और सितंबर-अक्टूबर के मास में नवजात जायंट स्कवीरल दिखाइ पड़ते हैं। बहुत उँचे पेड़ो पर जायंट स्कवीरल के घर रहते है। इस प्राणी को स्थानीक नाम में ''शेकरु'' कहा जाता हैं। भीमाशंकर के जंगलों से गुजरते वक्त हमें सबसे महत्वपूर्ण बात यह महसूस हुई, वो है इस प्राणी की आवाज। इसकी आवाज जंगल के सन्नाटेको चीरकर चली जाती थी। हमने भी बड़े उत्साह के साथ इस आवाज का पीछा किया और आखिरकार स्कवीरल को देख लिया। पेड़ की शाखाओं पर इस प्राणी की एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर लगाई गई छलांगे हम देखते रह गये।

हमारी भीमाशंकर यात्रा का प्रयोजन जिस के लिये था वो अनुभव भी बहुत असाधारण रहा। सेन्सस या प्राणीगणना के लिये जलस्त्रोत के पास वहां के छोटे छोटे क्षुपोके बीच हमनें बैठने की जगह तैयार की ताकि कोई प्राणी हमें देख न सके। इस जगह के आस–पास हमने कुछ वृक्षोंकी शाखांए भी लगा दी। इस जगहपर बैठकर हमने पूरी शाम गुजार दी, जंगल से आती हुई बॅब्लर्स, नाईटजार, स्मॉल ग्रीन बार्बेट, जैसे अनेकों पक्षीगणकी आवाजों ने हमें चौकन्ना रखा। उस रात हुई बारीश तो हम भूल ही नही सकते। कुछ प्राणियों के दर्शन से हमारी प्राणीगणना की ये यात्रा सफल रही।

भीमाशंकर में हमने पशु-पक्षियों के साथ वनस्पति का भी अध्ययन किया। भीमाशंकर का जंगल अनेक प्रजातियों का वास स्थान है। अभयारण्य के पश्चिम दिशा में जो जंगल है उसका प्रकार ''ट्रॉपीकल सेमी एव्हरग्रीन'' है। पूर्व बाजूमें जो वन पाये जाते हैं वो ''मॉईस्ट डेसिडयूअस'' प्रकार है। यहां की महत्वपूर्ण प्रजातियाँ हैं अंजन, कारवी, आम, पारमाजुन, हिरडा और पिसा। अंजन या ''मेमेसायलॉन अंबेलॅटम'' के वृक्ष संख्या में बहुत है, मार्च-एप्रिल के मास में जब फूल आते है तब ये वृक्ष बहुत ही सुंदर लगते है। कारवी (''स्ट्रॉब्यूलॅन्थस कॅलोलस'') नामक वनस्पति पहाडियों के ढलानों पर पायी जाती है इसमें सात सालमें एकबार, जांबूनी रंग के फूल आते है। कारवी से शहद मधुमक्खियाँ इकठ्ठा करती है वो बहुत ही बहमूल्य है। हिरडा या टर्मीनालीया चेब्युला यहां का महत्वपूर्ण वृक्ष हैं। यह वृक्ष यहां की विपुल औषधि वनस्पतियो में एक है और उसका त्रिफला चूर्ण में इस्तमाल किया जाता हैं। 'ओलीया डायीओंका या पार जामुन, स्थानीक भाषा में पारजांभूल, यहां उगानेवाले वृक्ष में एक है जिसपर जायंट स्कवीरल्स अपने घर बनाते है। यहां की बाकी महत्वपूर्ण वृक्ष है

अैन टार्मिनालिया अलाटा, नाना (लॅगरस्ट्रोमीया मायक्रोकारपा), जामुन (सायझीजीअम क्यूमीनी) और फायकस की कई प्रजातियाँ। भीमाशंकर में पायी जाने वाले औषधि वनस्पतियों में मंजिष्ठ (रुबीया कॉर्डीफोलिया), कुटज (होलेरीना प्यूबेसन्स), अमृता (मापीया फोईटीडा), शतावरी (ॲस्परेंगस रेसीमोजस), अंनंतमूल (हेमीडेस्मस इंडीकस), मधुनाशिनी (जीम्नेमा सील्व्हेस्ट्रीस) महत्वपूर्ण है।

भीमाशंकर वन्यजीव अभयारण्य से कई औषधी वनस्पतियाँ इकठ्ठा की जाती है और भीमाशंकर मंदिर के आसपास बेची जाती है, वो औषधि वनस्पतियाँ और स्थानिक नाम इस प्रकार है–जिम्नेमा सिल्वहेस्ट्रीस (बेडीकीचा पाला), युलोफीया न्युडा (अमरकंद), कायलेंथस अम्बोमार्जिनाटा (संजीवनी), कायनम स्पीसीज (रानकांदा), व्हीस्कम स्पीसीज (हाडजोडी), होलेरिना प्युबेसन्स (कुडा), ॲस्परॅगम रेसिमोजस (शतावरी), टिनोस्पोरा कॉर्डीफोलिया (गुलवेल), डायस्कोरिया मेलॅक्सीस व्हर्सीकलर, टेक्टारीया मॅक्रोडीटा (कोंबडनखी), कॅटयूनॅरगेम स्पाईनोसा (गेला), वुडफोर्डीया फ्रुटीकोसा (धायटी), कॅरीओटा युरेन्स (भेरली माड/अर्धा सुपारी), आदि।

यहां मिलनेवाली स्थानिक (एंडेमीक) प्रजातियों में गार्सीनिया इंडीका, ॲन्सीस्ट्रोक्लॅडस हायनीॲनस, मोलाव्हा स्पीकॅटा, स्मीथीआ परपूरीया, नॅनोथॅम्नस, सेरिकस जॅस्मीनम मलबारीकम, स्ट्रॅाब्लूलॅन्थस केलोसस, डायमॉफोकालिस लावीॲनस, डेन्ड्रोबीअम बाबॅट्युलम और कुरकुमा सूडोमॉटना, आदि प्रमुख है।

भीमाशंकर अभयारण्य मे विहार का अनुभव बहुत रोमांचकारी रहता है, चाहे जिस दृष्टिसे भीमाशंकर को देखें–वनस्पतिकी दृष्टिसे, प्राणी संपदा की दृष्टिसे या पर्यटन स्थल के तौर पर, हर बार भीमाशंकर अपनी अपेक्षाओंपर खरा उतरता है।

धार्मिक पूजन एवं उपयोगी वनस्पतियाँ

ग्रेस सुसान्ना लाकरा, मार्सेल तिग्गा एवं पी. जी. दिवाकर
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
अण्डमान एवं निकोबार परिमंडल
पोर्ट ब्लेयर

मनुष्य का प्रकृति से घनिष्ठ संबंध जन्म से लेकर मरण तक युगों से रहा है और वनस्पतियों के द्वारा हम ईश्वर का पूजन-अर्चन और औषधि के रूप में प्रयोग सदियों से करते आ रहे हैं। वनस्पति के बिना हम एक पल भी जीवित नहीं रह सकते हैं। प्राणवायु (आक्सीजन) वनस्पति की ही देन है। वन जीवनदाता, वर्षा का जनक एवं दूषित पर्यावरण का नाशक है। भारतीय संस्कृति में वन और वनस्पति को देवता का स्थान दिया गया है। अक्षय वट वृक्ष, पीपल और तुलसी की पूजा घर-घर में होती हैं जो हमारे मन में कई वृक्षों या पौधों के प्रति प्रेम व भक्ति भावना की सूचक है। कई वृक्षों या पौधों के फूल, फल व पत्ते देवी देवताओं के पूजन में उपयोगी होते हैं, साथ ही इनका प्रयोग हम औषध के रूप में भी करते हैं ।

प्राचीन वैदिक ग्रंथों में भी वनस्पतियों के विभिन्न उपयोगों का उल्लेख किया गया है। कवि रहीम ने ठीक ही कहा है–

''तरुवर फल नही खात हैं,
सरवर पियत न पानि।
कह रहीम पर काज हित,
संपति सचही सुजानि,''

वृक्षों की छाल, पत्तियां, फल, फूल, बीज तथा जड़ का किसी न किसी रूप में उपयोग होता आया है। प्रस्तुत लेख में कुछ ऐसे ही वनस्पतियों का उल्लेख किया जा रहा हैं जिनके विभिन्न भाग देवी, देवताओं के पूजन में प्रयुक्त होते है साथ ही उनमें अनेक औषधीय गुण भी हैं।

1. केला (मूसा पाराडिसियाका) : मूसासी

भारत का सर्वाधिक परिचित फल है। इसे सभी बड़ी आसानी से पहचान लेते हैं। इसके पत्तों का इस्तेमाल धार्मिक अनुष्ठानों शुभकार्यो में नियमित रूप से किया जाता है। विवाह, यज्ञ या देव-पूजा के अवसर पर पूजन वेदी के चारों ओर केले के पेड़ अथवा पत्तियों का गाड़ा जाना अनिवार्य हैं।

उपयोग – पके फल के नियमित सेवन से ऑतों की बीमारी, मधुमेह, गुर्दे की बीमारी, गठिया रोगों से जल्द छुटकारा मिलती है साथ ही पके केले का काढ़ा पीने से पेट में जमा कफ निकल जाता हैं।

2. **बेल : (एजिल मार्मेलस) : रूटेसी**

धार्मिक दृष्टि से बेल वृक्ष का महत्व है, कहा जाता है कि इस वृक्ष तले भगवान शिव वास करते हैं। शिव की पूजा के लिए इसके तीन पत्तों वाले गुच्छे शिवलिंग पर चढ़ाए जाते हैं। ऐसा माना जाता है कि बेल के पेड़ समस्त भारत में पाए जाते हैं। इसकी छाया बड़ी शीतल और आरोग्यकारक मानी जाती है। इसके पत्ते, छाल, कच्चा फल, पका फल, बीज, फूल जड़ सभी औषधि के रूप में काम आते हैं–जैसे पत्तों का रस और लुगधी बांधने पर फोड़े, धाव और विषैले कीड़े के कटे का दर्द, सूजन आदि ठीक हो जाता है। दमा और श्वास की तकलीफ में पत्तियों का काढ़ा शहद मिलाकर सेवन करने से लाभ होता है। खूनी बबासीर, कब्ज, शारीरिक कमजोरी में, बहुमूत्र, पेशाब की रुकावट, पेचिस आदि रोगों में बेल फल औषधि के रूप में उपयोग होता हैं।

3. **मदार : (कैलोट्रोपिस जिनानटिया) : असक्लेपिएडेसी**

मदार हमारे देश के उन वनस्पतियों में से है जिनका पुराणों में उल्लेख किया जाता है। महाभारत में लिखा है कि भगवान कृष्ण इसे देवताओं के राजा इन्द्र के बाग से चुरा कर पृथ्वी पर लाए। इसके फूलों के मनोहारी सौन्दर्य के कारण उनकी दोनों रानियाँ, रुक्मणी और सत्यभामा आपस में लड़ पड़ी थी । शिव-स्तुति में इसके फूल का विशेष महत्व हैं।

उपयोग : पत्तियों और टहनियों से निकलनेवाले दूध जैसा सफेद द्रव्य को सांप, बिच्छु, कनखजूरा व चूहा मारने में जहर के रूप में प्रयोग करते हैं। पत्तियों की लूगंधी धाव व अल्सर में, ऊपर से लगाकर ठीक किया जाता हैं। इसकी पत्तियों को गर्म कर सेंकने से अण्डकोष के दर्द ‐ व सूजन में राहत मिलती हैं। सूखी पत्तियों का इस्तेमाल रंगने के काम में होता हैं।

4. **धतूरा : (धतूरा स्ट्रेमोनियम) : सोलानेसी**

धतूरे का पौधा भारत में सर्वत्र सुगमता से उपलब्ध हैं। आमतौर पर खेतों के किनारे, गावों , शहर, में खाली मैदानों में यहां-वहां उगा हुआ मिल जाता है। भगवान शिव की पूजा के लिए लोग इसके फूल और फलों का उपयोग करते हैं। धतूरा सफेद, काला, नीला, पीला तथा लाल रंग के फूलों वाली पांच जातियों में मिलते हैं, जिनमें काला धतूरा, श्रेष्ठ माना जाता हैं।

उपयोग : यह ज्वारनाशक,श्वास रोग में हितकारी, गठिया, पागल कुत्ते का विष, अन्य जहरीले जानवरो के विष, कुष्ठ रोग नष्ट करने वाला, जुएँ और लीकों को मारने वाला, चर्म रोग दूर करने वाला हैं। यह सिर दर्द, सूजन, फोडे-फुंसी और पेट के कृमियों को नष्ट करने में भी प्रभावकारी हैं।

5. **नारियलः (कोकस नुसीफेरा) : अरेकेसी**

हमारे देश में नारियल को एक पवित्र फल मानते हैं और धार्मिक अनुष्ठानों में इसका प्रयोग की परम्परा आदिकाल से चली आ रही है। कहते हैं,

परशुराम इसे स्वर्ग से लाए थे। उन्होंने इसे केरल में बोया था। केरल शब्द का अर्थ है–'नारिकेल'। ऐसी धारणा है कि शरद पूर्णिमा की रात में लक्ष्मी स्वयं भूतल पर उतर कर देखती है कि ''नारिकेल जलं पीत्वा को जागर्ति महीतले'' अर्थात् नारियेल जल पीकर महीतल में कौन-कौन जाग रहा हैं। दक्षिण भारत में यह अपनी उपयोगिताओं के कारण 'हयसोना' के नाम से विख्यात हैं। वहां समुद्र तट पर बर्षा-ॠतुं के अंत में एक पर्व मानाया जाता हैं। तब लोग वरूण देवता को नारियल के फल अर्पित करते हैं। इस तरह हजारों की तादाद में इसके फल समुद्र में जा पडते हैं। इसे ''नारिकेल–दिवस'' कहते हैं।

उपयोग : नारियल तेल बहु उपयोगी हैं। खाने के अतिरिक्त इसे बालों में लगाना बहुत लाभप्रद हैं। यह तेल पैशाब की गड़बड़ी, जले घाव, सूजन, जोड़ों के दर्द, दमा, कफ, नासुर की रोक थाम में भी उपयोगी हैं। इसकी छाल दांतों और चर्मरोगों के उपचार में प्रयोग में लाई जाती हैं। इसका फल मीठा, देर से हजम होने वाला बुखार, लकवा, कलेजे की बीमारी, बावासीर, खून की वृद्धि, वजनवृद्धि में सहायक है।

6. सुपारी : (अरेका कटेचु) : अरेकेसी

सुपारी का विभिन्न रूप में सेवन हमारे देश में काफी प्रचलित और लोकप्रिय हैं। सुपारी का प्रयोग पूजा मे होता है। इस पेड की आदिभूमि मलेशिया है। किन्तु इसे काफी समय से भारतवर्ष के कई प्रांतो में व्यवसायिक स्तर पर उगाया जाता रहा हैं। सुपारी का वृक्ष देखने में सुंन्दर, बिल्कुल सीधा और आकाश से आया हुया तीर जमीन में गड़ा हो।

उपयोग : इसकी जड़े, छाल एवं फल गंजेपन में गुणकारी सिद्ध हुई है।

7. पानः (पाइपर बेटल) : पाइपरेसी

भारतीय संस्कृति में पान का इतना महत्व है कि पूजा, यज्ञ, हवन, सांस्कृतिक कार्यो, मेहमानों का स्वागत इसके बिना अधूरा समझा जाता है। अलग-अलग स्थानों में पैदा होने के कारण पान मद्रासी, बंगाली, कपूरी, महीबा, मालवी, मघई, विओला, महराजपुर, देशी आदि नामों से जाना जाता हैं।

उपयोग : यह शांतिदायक, काम-शक्ति बढ़ाने वाला, दिल, जिगर, और आवाज साफ करने वाला, दमा और खांसी दूर करने वाला, शरीर में स्वच्छ खून पैदा कर विकारों को दूर करता हैं।

8. नीम्बू : (सिद्रास लीमोन) : रूटेसी

यह 3 मी. तक ऊँचा झाड़नुमा कंटीला पौधा हैं। पत्ती के डण्ठल के छोर में चपटे पंख से होते हैं। 'विश्वकरमा'पूजा के दिन करमा भगवान को नीम्बू तथा नारियल चढ़ाए जाते हैं। अंत में नीम्बू को गाडी के पहियों से रौन्दा जाता है, और नारियल के टुकड़े लोगों को प्रसाद के रुप में दिये जाते हैं।

उपयोग : इसके फलों का रस खट्टा है जो विटामिन

'सी' से भरपूर है। यह ऑत के कीड़े निकालने, पेट दर्द, तथा फेफड़े के विकारों को रोकने में सहायक होते हैं। इसके रस में रक्तस्राव रोकने, शरीर को शीतल करने, रक्तरोग हटाने के भी गुण हैं।

9. नीमः (अजाडिरेक्टा इंडिका) : मिलियेसी

नीम को कल्पवृक्ष कहा जाय तो अनुचित नही होगा। इस अद्भूत औषधीय वृक्ष के बारे में एक रोचक कथा प्रचलित हैं। जब देवराज इन्द्र असुरों से अमृत कलश वापस प्राप्त कर देवलोक की ओर प्रस्थान कर रहे थे, उस समय नीम के पेड़ पर अमृत की कुछ बूँदें गिरी। फलस्वरूप इस पेड़ को अमृत के समान गुणों की उपलब्धि हुई। नीम महत्वपूर्ण अैषधीय वनस्पति बन गया। नीम की औषधीय उपयोगिता का अन्दाज इसी से लगा सकते हैं कि नीम के पेड़ के सभी अंग (जड, तना, पत्ती, फूल, फल) का किसी न किसी रूप में औषधि, कीटनाशक की तरह उपयोग होता हैं।

भारत में चेचक से बचने के लिए आंध्राप्रदेश में देवी की पूजा की जाती हैं। पूजा में नीम की पत्तियों का उपयोग होता हैं। चेचक के रोगी के बिछौने में पत्तियों का उपयोग किया जाता हैं। यदि रोगी को खुजली लगे तो रोगी उस स्थान पर पत्तियों से सहलाता हैं। रोग मुक्त होने पर प्रथम स्नान नीम पत्तियों को उबाल कर उसके पानी से कराया जाता हैं।

उपयोग : इसका रस कटु-तिक्त, तासीर में शीतल है जिसमें वात, पित्त और कफनाशक, रक्तशोधक, त्वचा रोग नाशक, कीटाणु नाशक, गुण है। यह मलेरिया, दंतरोग, कब्ज, पीलिया, बालों के रोग, कुष्ठ, दाह, रक्त पित्त, सिर दर्द, नेत्र रोग, प्रदर आदि में गुणकारी होता हैं। नीम का गोंद खून की गति को बढ़ाने वाला रक्त शोधक होता हैं। उपदंश और कुष्ठ की यह उत्तम औषधि हैं। आग से जली त्वचा के घावों पर नीम का तेल लगाने से घाव शीघ्र ठीक हो जाते हैं।

10. पीपल : (फाइकस रिलिजिओसा) : मोरेसी

पीपल को अथर्ववेद में लक्ष्मी, संतान और दीर्घायु देने वाला पेड़ बताया गया हैं। मान्यता हैं कि इसकी 108 परिक्रमा रोज करने से दीर्घायु प्राप्त होता हैं। संसार के अनेक देशों में तथा भारत में हिन्दू और बौद्ध इस वृक्ष को पवित्र मान कर इसकी पूजा करते हैं। गीता में भगवान कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि मै वृक्षों में अश्वत्थ यानी पीपल हूँ। यह कह कर उन्होनें इसकी श्रेष्ठता बढ़ाई हैं। हिन्दू धर्म-ग्रन्थों में लिखा है कि इसके पत्ते–पत्ते पर देवताओं का निवास हैं। कहा जाता है कि 288 वर्ष ईसा पूर्व महाराजा अशोक की बहन संघमित्रा द्वारा बौद्ध धर्म और पीपल का श्रीलंका पदार्पण में हुआ। जो आज भी वहॉ मौजुद है और वहॉ के लोग उसकी पूजा करते हैं।

उपयोग : पीपल रस में मधुर, गुण में गुरु, प्रकृति में शीतल , कफ-पित्त शामक होता हैं। यह दुर्बलता, घाव, मूत्र रोग, बांझपन, सिर दर्द, खांसी, हाथ-पांव फटने, उदरशूल, दमा, श्वेतप्रदर, रक्तस्राव, सर्प विष, वातशूल, त्वचा रोग में गुणकारी हैं। पेशाब की जलन, मसूड़ों की सूजन, पुराने सूजाक में छाल का काढ़ा लाभप्रद हैं।

11. बड़/ बरगद : (फाइकस बेंगार्लेसिस) : मोरेसी)

भारतीय संस्कृतिमें बड़ के वृक्ष को पवित्र माना गया हैं। बड़ विशाल, सघन, छाया देने वाला हैं, जिसकी शाखाओं से जटा लटक कर भूमि तक पहुँचती है और तने का रूप धारण कर लेती है। जैसे--जैसे वक्ष पुराना होता जाता है, वैसे वैसे इसका घेरा बढ़ता ही जाता हैं। यह भारत में सार्वजनिक स्थानों, मंदिरों कुओं के आस-पास अक्सर पाया जाता हैं।

हिन्दु लोग इसे बडे आदर की दृष्टि से देखते है और इसकी पूजा करते हैं। कहा जाता है कि महाप्रलय के समय सारी धरा जलमग्न हो गई, तब जल के ऊपर तैरते हुए बड़ के एक पते पर नारायण, एक अबोध शिशु के रूप में पत्ती पर लेटे, पैर के अंगुठे चूसते हुए दृष्टिगोचर हुए थे।

''वटस्य पत्रस्य पुटे शयानम् बालं मुकुन्दं मनसा स्मरामि'' भगवद् स्तुति के इन शब्दों में इसी की ओर संकेत है। फिर नारायण की नाभि से एक कमल निकलता है और उस पर पहले ब्रहमा की और तत्पश्चात् संसार के समस्त जीवों की सृष्टि होती हैं।

सधवा हिन्दू स्त्रियाँ जेठ की अमावस्या को वट-वृक्ष की पूजा करती हैं। इसे वट-सावित्री पूजा कहते हैं। कहते हैं कि सावित्री ने वट पूजा कर अपने मृत पति सत्यवान के प्राण वापस पाये थे।

उपयोग : बड़ वृक्ष के सभी अंग कसैले, शीतल, कफ, पित्त, धातु विकार, दाह, योनि विकार, ज्वर, वमन, विसर्प, दुर्बलता को नष्ट करने वाले होते हैं। यह दंत-शूल, स्तन की शिथिलता, रक्त प्रदर, स्वप्न दोष, कमर दर्द, जोडों का दर्द, बहुमूत्र, घाव, सूजन, बवासीर, मूत्र में खून आना आदि में गुणकारी है।

12. आम : (मैंजीफेरा इंडिका) : अनाकारडेसी

आम को शास्त्रों में अमृत फल को नाम से जाना गया है। आम सदा से इस देश में लोकप्रिय रहा हैं। हमारे प्राचीन ग्रंथो में भी इसका जिक्र किया गया है। बौद्ध ग्रंथों में लिखा है कि भगवान बुद्ध जब वैशाली पधारे थे, तब उन्होंने आम के ही एक बाग में डेरा डाला था। महाकवि कालिदास के प्रसिद्ध नाटक ''शाकुन्तलम''में लिखा है कि महर्षि कण्व के आश्रम में पली शकुन्तला ने वहॉ आम ¯का पेड़ लगाया था जिसमें वह स्वयं अपने हाथों से पानी डाला करती थी। वेद और संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रंथ ''अमरकोश'' में भी इसकी चर्चा की गई है। फाहियान, सुंगयुन, ह्वेन सांग, इब्नबतूता आदि विदेशी यात्रियों ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है और इसे संसार के अन्य फलों से श्रेष्ठ एवं पौष्टिक बताया हैं। हिन्दुओं के सभी उत्सवों और त्योहारों में घर के चारों ओर आम के पत्तों का वन्दनवार टांगा जाता है। शुभ कर्म के समय कलश में पानी भर कर उस पर आम का पल्लव रखा जाता हैं। होम के लिए आम की लकडी अति पवित्र मानी जाती है। तात्पर्य है कि युगों-युगों से हमारे साथ आम का घनिष्ठ संपर्क रहा हैं।

उपयोग : आम के कच्चे फल खट्टा, रूचिकारक, वात, पित्त को पैदा करने वाला, त्रिदोषों को कुपित करने वाला, रक्तविकार उत्पन्न करने वाला होता है, जबकि पका आम मीठा, मधुर, भारी बलबर्धक, बातनाशक, त्वचा को सुन्दर बनाने वाला, शीतल, हृदय को बल देने वाला, पित्त को न बढ़ाने वाला होता है। दुर्बलता, खॉसी, भूख न लगना, रक्ताल्पता, क्षय, दंत रोग, मिट्‌टी, खाने की आदत नाक से खून आना, मकड़ी का विष, रक्तस्राव, जलने पर, दस्त होने पर, हाथ-पैरों की जलन में आम के विभिन्न अंग औषधि के काम आते हैं।

13. बेर : (जिजिफस जुजुबा): रैम्नेसी

भगवान शंकर को बेर बहुत ही अच्छे लगते हैं। अतः उनसे सम्बन्ध रखने वाले सभी तीर्थ स्थानों में बेर के पेड़ देखने को मिलते हैं। शिवरात्रि के पर्व के अवसर पर बेर अवश्य ही चढ़ाए जाते हैं। श्रीराम और शबरी के जुठे बेर की कथा रामायण का एक बहु चर्चित प्रंसंग है।

उपयोग : बेर का फल खट्‌टा-मीठा होने के कारण भूख जगाने वाला, पेट दर्द, सिर दर्द, कफ, और चिड़चिड़ापन दूर करता है। पत्ते चर्म रोग और फोंड़ों से राहत पाने के लिए लगाए जाते हैं। पत्ती का काढ़ा जोड़ों के दर्द, गले के सूजन और मसूड़ो के रक्तस्राव से राहत पाने के लिए उपयोग किया जाता ह।

14. हरसिंगार : (निक्टान्थस आर्बोरट्रिस्टिस) : ओलिएसी

संस्कृत में पारिजात, बंगाली में शेफाली या शिउली नाम से जाना जानेवाला हरसिंगार इस देश के प्रमुख पुष्पों में एक है और प. बंगाल का राज्य पुष्प हैं। शरदकाल के आते ही छोटे-छोटे खुशबुदार फूलों से रात्रि महक उठती है और सूर्योदय होते ही फूल झड़ जाते हैं। महाकवि रवीन्द्रनाथ ने भी बंगाला साहित्य में इस पर अनेक कविताएँ रची हैं। फूल के नारंगी रंग को एकत्र कर बर्मा केबौद्ध-भिक्षु अपने काषाय वस्त्र रंगते हैं। पारिजात हरण नाकम नाटक सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं बंगाली में सेफाली या शिउली कहते है।

उपयोग : फूल वातावरण को खुशबुदार बनाते हैं। पत्ती में सड़न रोधक, शोधक, पित्त, प्रकोप रोधक, मल को मुलायम करने वाला, कूल्हे या घुटने की गठिया निवारक पसीना लाने वाला, मूत्रवर्धक ओषधि के गुण पाए जाते है। बीज का चूर्ण लगाने से घावों की पपड़ी और निशान मिट जाते हैं। बच्चों के पेट से कृमि तथा कफ निकालने के लिए इसकी छाल का रस या काढ़ा पिलाया जाता है।

15. साल : (शोरेया रोबस्टा) डिपटेरोकार्पेसी

किसी कवि ने साल की वन्दना इन शब्दों में की है :–

"भव–भूतल को भेद गगन कें उगने वाले साल प्रणाम"

इसकी ऊँचाई देखकर महाकवि कालिदास ने रघुवंश के राजा दिलीप की उपमा साल वृक्ष से की है:

''साल प्राशुर्महाभूजः''

अर्थात् साल–सरीखे ऊँचे, लम्बे भुजाओं वाले । इसमें शक नहीं कि देखने में ऐसा लगता है मानी धरती से सीधे आकाश की ओर उठ रहा हो। इस पेड़ को सखुआ (साखू) भी कहते है।

इसमें फरवरी-मार्च में फूल और मई -जून में फल आते हैं। हिमालय के तराई से लेकर मध्यप्रदेश और उड़ीसा तक यह वृक्ष पाया जाता हैं। पर असम, बंगाल, और चोटा नागपुर के जंगलों में अधिक मात्रा में होता है। नेपाल की तराई में इसके बड़े-बड़े जंगल है, साल वृक्ष के संबंध में अनेक लोक कथाएं इस देश में प्रचलित हैं। छोटा नागपुर के आदिवासियों के गॉव साल वृक्ष के जंगलों में हैं। गॉव के उरांव जाति के लोगों का त्योहार है, सरहुल। जब सखुआ के पेड़ फूलों से लदे होते हैं तब यह त्योहार मनाया जाता है। इस शुभ अवसर पर सभी प्रेतात्माओं और भगवान को बलि चढ़ायी जाती है। इन दिनों उराव वर्षा की प्रतीक्षा करते हैं इस उत्सव के अवसर पर सरना में वार्षिक पूजा कर्म अच्छी फसल के निवेदन से संपन्न होता है। अपने एक गीत में वे कहते हैं–

''साल की पेड़ों पर चॉद के बच्चे नाच रहे है,
सोने चॉदी की इनकी ढ़ोलकें हैं।''

अर्थात् साल वृक्ष से इनके जीवन का घनिष्ट संबंध है उसकी डालों की लकड़ियों को बेच कर ये धन कमाते हैं, जिससे इनका काम धन्धा और रोजी रोटी चलती है।

एक और कथा इस प्रकार है–कहते हैं, महाराजा शुद्धोदन की रानी महामाया के गर्भ के नवां माह आरंभ होते ही उसने मायके जाने की इच्छा प्रकट की। वह सोने की पालकी पर मायके रवाना हुई, रास्ते में साल वृक्षों के जंगल में फूलों से लदे वन उसे इतना सुंदर लगा कि उसने फौरन पालकी रूकवा दी। ज्यों ही रानी खड़ी हुई तभी फूलों से लदी एक डाली अपने आप झुक गई। रानी ने अपने हाथ से पकड़ना चाहा, तभी उसके गर्भ से एक पुत्र का प्रसव बिना किसी प्रसव पीड़ा हो गया। यही बच्चा बाद में भगवान बुद्ध के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

उपयोग : इससे प्राप्त धूप पूजा में सुगंध हेतु जलाया जाता हैं। साल-धूप ऑव स्वच्छ करने और रोकनेके लिए, अपचन, कामोद्दीपन और सूजन में औषधि के काम आते हैं।

16. महुआ : (मधुका इंडिका) : सापोटेसी

छोटा नागपुर के हिन्दु धर्म के टाना भगत लोग इसी वृक्ष के तले पूजा याचना करते हैं। यह हमारे देश के प्रसिद्ध वृक्षों में एक है। इसकी प्रसिद्धि लकड़ी के लिये नहीं, बल्कि फूलों के लिये है। पुष्प गुच्छों में रसीले, मधुर, गंधयुक्त, सफेद होते हैं जिनका रंग सूखने पर लाल मटमैला हो जाता है। पके पुष्प वृक्ष से अपने आप टपक जाते हैं जिनकी सुवास से आस पास का वातावरण सुवासित हो जाता हैं। मार्च-अप्रेल में फूलों की बहार आती है और मई -जून में इसके फल लगते हैं। पका फल स्वाद में मीठा होता हैं। खास कर मध्य-प्रदेश, छोटा-नागपुर आदि के

गांवों के आदिवासी इसे भोजन के काम लाते हैं। इसके फूलो को सुखाकर रखते हैं और साल भर खाते है। सूखे फूलों से देशी शराब भी बनाते हैं। गरीब आदिवासी इसे बेचकर पैसा कमाते हैं । इस तरह से यह आमदनी का एक प्रमुख जरिया हैं।

उपयोग : यह कमजोरी, नपुंसकता, खांसी, बवासीर, मासिक धर्म साफ न आना, खुजली, वातशूल, कब्ज, गैस विकार, स्तनदुग्ध की कमी, लो ब्लड प्रेशर, फोडे-फुंसी में गुणकारी हैं।

17. **कदम (एन्थोसेफालस चयर्नेसिस): रूबिएसी**

भगवान कृष्ण वृंन्दावन में यमुना तट पर कदम्व वृक्ष के नीचे वंशी बजाया करते थे और इसकी डालों पर झूला डाल कर झूला करते थे। आज भी ब्रज में जहॉ-तहॉ कदम्व के वृक्ष काफी मात्रा में उपलब्ध हैं। अक्सर नदियों के किनारे यह वृक्ष हुआ करते हैं। उत्तर तथा दक्षिण भारत के बहुतेरे ऐसे स्थानों पर यह वृक्ष पैदा होता हैं जहां गर्मी अधिक पड़ती हैं। पहाड़ी ठण्डी जगहें इसके लिए ऊपयुक्त नहीं है। चीन और मलाया में भी यह पाया जाता हैं।

उपयोग : छाल का काढ़ा सांप के काटने पर, बलवर्धक, ज्वर हटाने, दस्तरोकने आदि के लिए औषधि के रूप में उपयोग होता हैं। यह वातावरण संतुलित रखता है। पत्तियों को उबालकर पानी से कुल्ला करने पर मुंह तथा पेट की बीमारी साथ ही दांत दर्द भी ठीक होती हैं।

18. **बॉस : (प्रागमिटिस करका) : पोएसी**

इसे संस्तृत भाषा में वेणु कहा गया है. कहते हैं कि यह वही वॉस है जिससे कृष्ण की बांसुरी बनी थी। यह सच है कि बाँस की बनी बॉसुरी के छिद्रों से निकले स्वर में जो मिठास है, वह चॉदी आदि धातुओं से बनी बॉसुरी में नहीं।

उपयोग : चिकित्सा की दृष्टि से बॉस की अनेक उपयोगितायें हैं। इसके तने और पत्तों से रक्त और पित्त की बीमारियॉ, श्वेत कुष्ठ, सूजन, घाव, कफ आदि के इलाज के लिये औषधि तैयार की जाती हैं। पुराने बॉस के अन्दर से एक प्रकार का श्वेत पदार्थ है जिसे बॉसलोचन कहते हैं। आयुर्वेद के मतानुसार यह गुणों से भरा हुआ है। खासकर कफ रोग के लिए तो रामवाण औषधि हैं। बॉसका बीज पित्त और जड़, दाद, पॉव का दर्द, दांत के मसूड़े से रक्त निकलने आदि की दवा हैं।

19. **दूब : (सिनोडोन डेक्टिलोन) : पोएसी**

हिन्दू धर्म शास्त्रों में दूब को परम पवित्र मानने के कारण प्रत्येक मांगलिक अवसरों पर पूजन सामग्री के रूप में इसका उपयोग किया जाता है। यह देवता, मानुष और पशु सभी को प्रिय होने के कारण खेल के मैदानों, मंदिर परिसरों तथा बाग बगीचों में विशेष तौर से उगाई जाती हैं।

उपयोग : यह रस में मधुर, वातावरण को शीतल करनेवाली और कफ-पित्त नाशक हैं। रक्त विकार,

रक्त पित्त, रक्त स्राव, श्वास, वमन, दस्त, मूत्र दाह, नेत्र दाह, ज्वर, रक्त प्रदर आदि को रोकने में प्रयुक्त की जाती हैं।

20. **कमल : (निलुम्वो नुसिफेर) : निमफएसी**

भारतीय संकृति में कमल फूल का महत्वपूर्ण स्थान हैं। ब्रह्मा, लक्ष्मी और विद्या की देवी सरस्वती कमल के पुष्पासन पर ही विराजमान माने जाते हैं। यह जल में ही उगता है और अपने रूप, रंगों से सभी को अपनी और आकृष्ट कर लेता हैं। कमल का पौधा झीलों, ताल-तलाबों की सतहपर फैलता हैं।

उपयोग : यह शीतल, स्वाद में मधुर होता हैं। कफ, पित्त, रक्त विकार, प्यास, दाह, फोड़ा तथा विष नाशक है। जी मिचलाना, दस्त, मूत्र विकार, त्वचा रोग, बुखार, दुर्बलता, बवासीर, रक्तस्राव में भी गुणकारी हैं।

21. **ऑवला : (एमब्लिका ऑफिसिनेलिस) : युफोर्बिएसी**

आवले का वृक्ष प्रायः भारत के सभी प्रान्तों में पाया जाता हैं। तुलसी की तरह ऑवले का वृक्ष भी धार्मिक दृष्टि से पवित्र माना जाता हैं। भारत में स्त्रियॉ अपनी मनोकामना पूर्ति हेतु इस पेड़ की पूजा करती है।

उपयोग : ऑवला टानिक के रुप में शरीर और स्वास्थ्य के लिये अमृत तुल्य हैं। विटामिन सी से भरपूर ऑवला खाने के बाद पानी पीने पर मीठा लगता हैं। शीतल प्रकृति, नेत्र रोग, केश और कांति के लिए भी यह बहुत उपयोगी हैं संक्रमण से बचाने, मसूड़ों को स्वस्थ रखने, घाव भरने और खून बनाने में भी यह महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता हैं।

22. **चन्दन : (सैन्टलम एल्बम) : सेंटेलेसिए।**

भारतीय मूल का वृक्ष जो अपनी मनमोहक सुगन्ध के कारण विदेशों में भी लोकप्रिय हैं। यह भारत के प्रायद्वीप क्षेत्र में मिलता हैं किन्तु कुछ लोगों का मानना है कि चन्दन भारतीय न होकर विदेशी वनस्पति है जो टिमोर इण्डोनेशिया से यहॉ आई हैं। चन्दन का वर्णन भारतीय पौराणिक महाकाव्यों जैसे रामायण एवं महाभारत में भी किया गया हैं।

भारतीय संस्कृति एवं हिन्दू धर्म में चन्दन को जितनी प्रधानता दी गई हैं उतनी किसी भी अन्य वृक्ष को नहीं दी गई हैं । इसके महत्व को इसी से आंका जा सकता हैं कि बिना इसके पूजा अर्चनाही अपूर्ण हैं। हिन्दूधर्म में स्नान उपरान्त मस्तक पर चन्दन का लेप भक्त एवं भगवान दोनों को लगता है।

उपयोग : चंदन की लकड़ी (अंतः काष्ठ) से प्राप्त तेल मूल्यवान इत्र बनाने व औषधि में प्रयुक्त होता हैं। इस तेल में मूत्रविरेचक गुण है, यह मूत्र–कच्छ के इलाज में दिया जाता है। इसे मूत्राशय की सूजन, सूजाक और खांसी में भी उपयोगी बताया गया है। मूत्राशय के क्षय रोग में चंदन का तेल लाभदायक होता हैं। इससे कुछ कीटनाशक औषधियां भी बनती हैं।

23. **रूद्राक्ष : (इलियोकार्पस स्फेरिकस) : इलियोकार्पेसी**

रूद्राक्ष का भारतीय जन-मानस विशेषकर हिन्दू धर्म में एक विशिष्ट स्थान हैं। रूद्राक्ष को निर्वाण, मुक्ति, ज्ञान और पवित्रता का प्रतीक माना गया हैं। ऐसा कहा जाता है कि इसे धारण करने से दुख, प्रेतात्मा के प्रभाव तथा अन्य कलुषित भावों से मुक्ति मिलती है। रूद्राक्ष का अर्थ होता है रूद्र यानी भगवान शंकर की ऑख। अपने धार्मिक, आध्यात्मिक, औषधीय एवं तंत्र-मंत्र सम्बंधित गुणो और विश्वासो के कारण रूद्राक्ष सदैव चर्चित रहा है। कुछ लोगो के मतानुसार एक बार जब शंकर असुरों से युद्ध कर रहे थे तो युद्ध विनाश लीला को देख कर वे रो पड़े और जहां-जहां उनके आंसू गिरे वहां-वहां वृक्ष उग आया जिसे रूद्राक्ष कहा गया।

उपयोग : धार्मिक एवं आध्यात्मिक महत्वों के अतिरिक्त रूद्राक्ष में अनेकों औषधीय गुण विद्यमान हैं। रूद्राक्ष का प्रयोग मानसिक तनाव तथा उच्च रक्तचाप कम करने में किया जाता है तथा मिरगी, हृदय रोग, क्षय रोग एवं नाड़ी विकार में भी उपयोगी माना गया हैं। ऐसी मान्यता भी है कि रूद्राक्ष को पानी में रात भर रखने के वाद उस जल को पीया जाये तो पेट के विकार दूर हो जाते है तथा तिल के तेल में 21 दिन तक रूद्राक्ष रख कर उस तेल से जोड़ो की मालिश करने से जोड़ों के दर्द में आराम हो जाता। बहुत से लोगों का यह भी मानना है कि तकिये के नीचे रूद्राक्ष रखकर सोने से अनिद्र रोग से छुटकारा मिलता हैं। रूद्राक्ष वात, और कफ के विकारों को ठीक करता हैं।

24. **गुडहल : (हैबिस्कस रोजासिर्नेसिस) : मालवेसी**

गुडहल का पौध बाग-बगीचो, घरों और मंदिर में फूलों हेतु लगाया जाता है। इसके फूल विशेष कर देवी -माताओं के पूजा के समय चढाया जाता हैं।

उपयोग : आयुर्वेदिक मतानुसार गुडहल रस में मधुर, कषाय गुण में लघु प्रकृति में शीतल, विपाक में कटु कफ और वात शामक होता हैं। यह केशों के लिये हितकारी, गर्भस्थ शिशु को पुष्ट करने वाला, शरीर व पेशाब की जलन मिटाने वाला, मस्तिष्क की दुर्बलता हरने वाला, संकोचक, सूजन दूर करने वाला, सूजाक हृदय रोग, प्रदर रोग रक्त प्रदर आदि में गुणकारी हैं।

25. **चांदनी : (टबेर्नीयमोन्टाना डाईबेरिकेटा) : अपोसाइनेसी**

जिस पूजा में श्वेत पुष्प की आवश्यकता होती है वहॉ पर इस पुष्प की माला भगवान को अर्पित की जाती है। विशेषकर शिव पूजा में इस पुष्प को चढ़ाया जाता हैं।

उपयोग : इसके पौधे खेतों व बागों के बाड़ पर लगाये जाते हैं। इसकी जड़े रतौधी, लकवा, मिरगी, रक्त-विकार सम्बन्धी रोगों में प्रयोग की जाती हैं साथ ही इनको दॉत दर्द के समय चबाये जाने व इसको पीसकर बिच्छू के काटने के स्थान पर लगाये जाने से दर्द से आराम मिलता है। पौधे के श्वेत-रस को सिर

दर्द व फोड़ो पर भी लगाये जाते हैं।

26. **चंपा : (माइकेलिया चंपाका) : मैगनोलियेसी**

हिन्दू महिलायें यह पुष्प भगवान विष्णु को चढ़ाकर अपने को भाग्यशाली अनुभव करती हैं। दक्षिण भारत में इस पुष्प को पवित्र मानते हैं।

उपयोग : इस पुष्प से तीव्र सुगन्धित तेल निकाला जाता है, जिससे इत्र बनाया जाता है। इसकी जड़ो की छाल से दस्त की दवा बनायी जाती हैं। पुष्प व फल से सड़नरोधक, शक्तिवर्धक व वातविकार सम्बन्धी औषधि बनायी जाती हैं।

संदर्भ सूची :

1. जैन, सुधांशु कुमार–1967 : वनस्पति कोश-उपयोगी पौधों का हिन्दी लैटिन कोश, दिल्ली।

2. जैन, सुधांशु कुमार–1968 : औषधीय पौधे–नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया।

3. जैन, सुधांशु कुमार (संपा) –1981 : ग्लिम्पसेज ऑफ इंडियन एथनोबॉटनी आक्सफोर्ड, नई दिल्ली।

4. जैन सुधांशु कुमार एवं रामलखन सिंह–1999 कुछ पौधों के अपरिचित उपयोग, वनस्पति वाणी अंक 9, सितम्बर।

5. दत्त यू० सी०–1870 दि मैटीरिया मेडिका ऑफ दी हिन्दूज, कलकाता।

6. श्रीवास्तव ए० के०, आर० डी० दीक्षित–1996 गणेश पूजा की एक्कीस वनस्पतियाँ: एक अवलोकन वनस्पतिवाणी, अंक 7, सितम्बर।

7. रेशमा माथुर– 1997-98: फलो के सुफल, वनस्पतिवाणी, अंक 8. सितबर।

प्राचीन ग्रंथों में पौधों की महिमा एवं संरक्षण

एस एल गुप्त, एच एस पाण्डेय
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
कोलकाता

प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता प्रकृति एवं पर्यावरण से प्रभावित रही है जिसका उल्लेख हमारे प्राचीन ग्रंथों में हुआ है। समय-समय पर इसका उल्लेख अनेकों मनीषियों एवं विद्वानों ने इस उद्देश्य से किया है जिससे जनमानस में पर्यावरण एवं पौधों के प्रति प्रेम व जागरूकता बढ़े, संरक्षण की, ओर कदम बढ़े तथा पर्यावरण विघटनकारी शक्तियों के प्रति सचेत हों। जैव विविधता के संरक्षण के प्रति छिड़े युद्ध एवं संरक्षण के महत्व को देखते हुए इन विचारों का महत्व अनायास ही बढ़ जाता हैं।

प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में प्रार्थना स्वरूप ऐसा कहा गया है–

''जल, आकाश एवं जटायुक्त वृक्षों द्वारा वनस्पति हमारी, वनों व पर्वतों की रक्षा करे।''

चिरकाल से ही पेड़-पौधों पर आश्रित होने के कारण वृक्षों को हमारे पुराणों में अत्यन्त परोपकारी कहा गया है जो 'वराह पुराण' की निम्न पंक्तियों से स्पष्ट है :–

इन्धनार्थ यदानींत अग्निहोंत्र तदुच्यते।
छाया विश्राम पथिकैः पक्षिणां निलयेन च।।
पत्र मूल वगादिभिर्य औषधार्थ तु देहिनाम्।
उपकुर्वान्ते वृक्षस्य पंचयज्ञः स उच्यते।।

अर्थात् वृक्षों के पांच उपकार उनके दैनिक पांच महायज्ञ है। वे गृहस्थों को ईंधन देकर, पथिकों को छाया व विश्राम स्थल प्रदान कर, पक्षियों के नीड़ बनकर तथा पत्तों, जड़ों एवं छालों से सारे जीवों को औषधि देकर उपकार करते हैं।

इसी ग्रंथ के अनुसार 'पंचागवापी नरकम न याति' अर्थात् आम के पांच वृक्ष लगानेवाला कभी नरक नहीं जाता।

'मत्स्य पुराण' में वृक्षों महिमा का वर्णन निम्नरूप में है–'एक वृक्ष का रोपण दस पुत्रों के बराबर हैं।

'बिकम चरितम्' के अनुसार वृक्ष सज्जनों की

तरह परोपकारी हैं। स्वयं धूप में खड़े होकर छाया देते हैं। इनके फल-फूल भी दूसरों के लिए होते हैं।

'छाया मन्यस्य कुर्वन्ति तिष्ठन्ति स्वयमात मे,
फला मापि परार्थाम वृक्षः सपुरूषा इव।

जहां महान दार्शनिक याज्ञवल्क्य ने **'बृहदारण्यकोपनिषद'** में मनुष्यों एवं वृक्षों का तुलनात्मक विवरण दिया हैं वहीं श्रीमद्‌भागवत में वृक्षों की प्रशंसा इस प्रकार की गई हैं–

अहों एषां वरं जन्म सर्व प्राणमुपजीवनम्,
सुजनस्वेव धन्या महीरूहा येम्योनिराशायान्ति नार्थिनः।

अर्थात् समस्त प्राणियों को जीवन प्रदान करने वाले इन वृक्षों का जन्म कितना उतम हैं, ये सज्जनों जैसे धन्य हैं जहां से याचक निराश नहीं लौटता।

इसी में वृक्षों द्वारा कामनाओं की पूर्ति के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा गया हैं–

पत्र-पुष्प-फलच्छाया-मूल-बल्कल दारूभिः
गंध निर्यास भस्मास्थि तोकमै कामान्‌चितन्वते।

अर्थात् वृक्ष अपने सभी अवयवों जैसे पत्तो, फलों, छाया, जड़ों, छालों, गंध गोंद, राख, कोपले एवं टहनियों से सबकी कामनाएं पूरी करते हैं।

'उपवन विनोद' के अनुसार अधर्मी व दरिद्र अनेक पुत्रों की अपेक्षा वह वृक्ष ही अच्छा हैं जिसकी छांव में पथिक विश्राम करते हैं–

बहुभिर्वत कि जातैः पुत्रै धर्मार्थ वर्जितः,
वरमेकः पथि तरु पत्र विश्रयते जनः।

तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरित मानस' में वृक्षों की तुलना संतों से इस प्रकार से की गई है–

तुलसी संत सुअंब तरु फुलत फलत पर हेतु,
इतते ये पाहन हनत उतते वे फल देत।

पवित्र धर्म ग्रंथों के अलावा विभिन्न धर्माबलम्वियों एवं विद्वानों का मत भी इसी प्रकार पर्यावरण संरक्षण की ओर जनमानस का ध्यान अपनी ओर खींचता हैं क्योंकि यह समस्या अपने देश की ही नहीं वरन् विश्वव्यापी हैं।

बौद्धधर्म के प्रवर्तक भगवान बुद्ध ने वृक्षों के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा हैं–

''वृक्ष असीम दया एवं उपकार की वर्षा करने वाले प्रभु की अनोखी देन हैं जो स्वपोषण के लिए किसी से वस्तु की अपेक्षा नही करते वरन् अपने कर्मण्यता के प्रतिफलों को खुले हाथों बिखेरते या लुटाते हैं। यही नहीं ये उस लकड़हारे को भी छाया देते हैं जो काटने के लिए आये होते हैं।''

भारत के महान सम्राटों एवं कूटनीतिज्ञों आदि ने पौधरोपण एवं संरक्षण की घोषणा एवं

आदेश दे रखा था। सम्राट अशोक ने वृक्ष रोपण के निरीक्षण के लिए एक उच्च स्तरीय समिति का भी गठन किया था। महान कूटनीतिज्ञ चाणक्य के अनुसार किसी साम्राज्य की स्थिरता उसके पर्यावरण की स्थिरता पर निर्भर करती है। सिखों के धर्मगुरु गुरुनानक जी का पर्यावरण के प्रति मत बिल्कुल स्पष्ट है–

''मेरा मत है सत्यमार्ग, मेरी जाति वही है जो अग्नि एवं वायु की है, जो शत्रु मित्र को एक समान समझती है। मुझे वृक्ष एवं धरती की तरह रहना है। नदी की तरह मुझे इस बात की चिन्ता नहीं कि मुझ पर कोई पवित्र फूल फेंकता है या कूड़ा-कर्कट। मैं जीवित उसी को समझता हूँ जो चंदन की तरह हर समय जनता की सेवा में हिस्सा लेता हुआ अपनी सुगन्ध फैलाता रहे।''

प्राकृतिक सम्पदा एवं प्रकृति के बारे में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के विचार आजके वृक्षों की कटाई वालों के मुँह पर एक तमाचा हैं–

प्रकृति के सम्भार सबकी अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु पर्याप्त हैं। किन्तु चन्द लोगों के लालच को तृप्त करने के लिए बहुत थोड़े हैं।''

प्रकृति व पौध प्रेमी गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टेगोर के वृक्षरोपण अभियान को कौन भूल सकता है। प्राकृतिक संसाधनों के दुरुपयोग एवं अनायास वृक्ष काटने के वे विरोधी थे। उनके अनुसार 'वृक्ष जीवन की जड़, सुखी आश्रय का द्वार पथ, स्वर्ग का रास्ता तथा मानव जाति का एक मित्र है।''उनका कथन था कि वृक्षों की उपयोगिता का प्रभाव डालने का सबसे उत्तम तरीका है कि हम अपने चारो तरफ वृक्ष का रोपण करें।

भारतीय मनीषियों के अलावा अनेक विदेशी विद्वानों ने भी पर्यावरण तथा वृक्ष के सम्बन्ध में अपने विचार स्पष्ट किये है। प्रसिद्ध नाटककार जार्ज बर्नार्ड शा ने पर्यावरण के सम्बन्ध में अपना विचार इस तरह रखा–''अपने कुटुम्वियों को मारकर खा जाना आर पशुपक्षियों का मांस खाना समान स्तर का अपराध है।''

जी. पी. मोरिस ने वृक्षों के बारे में इस प्रकार अपने उद्‌गार व्यक्त किये हैं–

वृक्षों को बचाता है जंगल के पेड़ों का रखवाला,
नहीं छूता है डाल एक भी उनकी,
शरण दिया है मुझे उसने बीते समय में,
और रक्षा करुंगा मैं अब इसकी।

भारतीय संस्कृति 'बसुधैव कुटुम्बकम' तथा 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का संदेश देती हैं जो संतुलित एवं स्वच्छ पर्यावरण से ही सम्भव हैं। इस हेतु मनीषियों के संदेशों एवं उनके आदर्श विचारों को व्यावहारिक रूप देना अति आवश्यक है। वर्तमान एवं भावी पीढियों में इन विचारों के प्रति चेतना ज कनारों आदि स्थानों में उसका प्रदर्शन आदि आवश्यक हैं। यह पर्यावरण और पौध विविधता संरक्षण में सहायक हो सकता है।

जैविक खाद

जय राम शर्मा व भगवती प्रसाद उनियाल
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून।

भारत का क्षेत्र पूरे विश्व के क्षेत्र का केवल 2.4 प्रतिशत है परन्तु पूरे विश्व की आबादी का 16 प्रतिशत भाग इस क्षेत्र में रहता हैं। निरंतर बढ़ती इस जनसंख्या का भरण पोषण पुराने कृषि तरीकों से कर पाना संभव नहीं हैं। पूरे विश्व में इस समस्या के निदान के लिये नये नये उपाय खोजे गये हैं जिनमें फसलों को उगाने के तरीकों में बदलाव, सिंचाई, कृत्रिम खादों व कीटनाशकों का उपयोग, मिट्टी का प्रबंधन इत्यादि शामिल हैं। उदाहरण के लिये रासायनिक खादों को ही लें। यों तो इनका प्रयोग पिछले 150 वर्षो से किया जा रहा है परंतु पिछले कुछ दशकों, विशेषकर 1950 से 1960 के बीच में इनका उपयोग इस तीव्रता से हुआ कि यह 14 मी० टन से बढ़कर 143 मी० टन तक पहुंच गया। इससे पूरे विश्व में अन्न उत्पादन में निश्चित रूप से वृद्धि हुई है जिसके परिणामस्वरूप 1950 से 1984 के बीच अन्न उत्पादन प्रति व्यक्ति 40 प्रतिशत बढ़ गया। भारत में आई हरित क्रांति में भी इन खादों का महत्वपूर्ण योगदान है। एक अनुमान के अनुसार वर्तमान में हमारे देश में लगभग 64 कारखाने कृषि रसायनों का उत्पादन करते हैं। इसी अनुमान के अनुसार प्रति हैक्टयर लगभग 75 किग्रा० रासायनिक खाद का प्रयोग किया जा रहा है। पंजाब में यह मात्रा कहीं अधिक है जबकि उत्तर पूर्वी भाग में काफी कम है। आज रासायनिक खादों पर विश्व की निर्भरता इतनी बढ़ गई है कि यदि इनका उपयोग बंद कर दिया जाय तो आबादी का एक बड़ा भाग भुखमरी के कगार पर पहुंच जायेगा। परन्तु सिक्के का एक दूसरा पहलू भी है। महंगी होने के साथ साथ इन खादों का केवल कुछ ही भाग पौधों द्वारा प्रयुक्त किया जाता है व शेष रिसकर मिट्टी व भूगर्भीय जल में प्रवेश कर जाता है जो पौधों जंतुओं के लिये हानिकारक सिद्ध हो रहा हैं। मिट्टी में मौजूद कृषि के लिये लाभकारी जीवाणु भी इससे प्रभावित हो रहे है। जिसके कारण मिट्टी की उर्वरा शक्ति मे कमी आ रही है। अमेरिका स्थित **''वर्ल्ड वाच इंस्टीट्यूट''** ने संकेत दिया है कि 1984 के बाद से विश्व में अन्न उत्पादन निरंतर घट रहा है। चूंकि बढ़ती आबादी के दबाव के कारण कृषि भूमि में वृद्धि की संभावना नगण्य है, अतः अन्न उत्पादन के लिये ऐसी तकनीकें व प्रबंधनों की आवश्यकता है

जिनके परिणाम दूरगामी हों। जैविक खादों का उपयोग इनमें से एक उपाय है।

"जैविक खाद" स्वतंत्र या सहभागिता में रहने वाले उन जीवाणुओं का समूह है जो मिट्टी की उर्वरकता बनाये रखते है जिससे पौधों को आवश्यक पोषक तत्व प्राकृतिक रूप से मिल जाते है। जैविक खादों के उपयोग से मिट्टी व पानी प्रदूषित नहीं होते व साथ ही जीवाणुओं की निरंतर वृद्धि के कारण मिट्टी की उर्वरकता भी बनी रहती हैं। इनका उपयोग पारिस्थितिकीय संतुलन बनाये रखने में भी सहायक सिद्ध हो रहा है। जीवाणुओं के साथ शैवाल व कवक भी "जैविक खाद" का स्रोत है। देखने में साधारण होते हुए भी ये महान गुणकारी हैं। जैविक खाद प्रदान करने वाले मुख्य समूह निम्न हैं :

1. **एजोला–एनाबीना सहभागिता** Azolla-Anabaena Symbiosis : एजोला विश्व भर में पाया जाने वाला जलीय पर्णांग है इसके पत्तों मेंAnabaena azollae नामक डाइनाट्रोजन फिक्सिंग (Dinitrogen fixing) नील हरित शैवाल होता है जो वातावरण में मौजूद नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर एजोला को जैविक खाद का स्वरूप प्रदान कर देता हैं। धान की खेती के लिये इसकी उपयोगिता विश्व भर में सुविदित हैं। धान के खाली खेतों में उगा एजोला भार में लगभग 6 गुना बढ़ जाता हैं जिससे मिट्टी को टनों जैविक खाद मिल जाती हैं।

2. **जीवाणविक जैविक खाद (Bacterial Biofertilizers)** यह दो प्रकार की होती हैं : अ) **नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले जीवाणु (Nitrogen fixing Bacteria)** : मटर कुल के पौधों की जड़ों में सहभागिता के आधार पर रहने वाला राइजोबियम (Rhizobium) नामक जीवाणु बड़ी मात्रा में वातावरण में मौजूद नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करता हैं। मटर कुल के पौधों की खेती में कृत्रिम खाद के स्थान पर इन जीवाणुओं का व्यापक रूप से उपयोग हो रहा हैं। राइजोबियम के अतिरिक्त Bradyrhizobium तथा Azorhizobium अन्य दो ऐसे जीवाणु हैं। ये जीवाणु पौधों की जड़ों में प्रवेश कर अंत में नाइट्रोजन स्थिरीकरण ग्रंथि (Nitrogen fixing Nodule) बना देते हैं। इस प्रक्रिया में जीवाणु व पौधे के कई जीन (genes) शामिल होते हैं, जिनके संरचना व नियंत्रण कार्य पर काफी शोध किया जा चुका हैं।

ग्रंथि बनाने वाले जीवाणुओं के अतिरिक्त फसली पौधों के आस पास मिट्टी में स्वतंत्र रूप से रहने वाले कुछ जीवाणु भी नाईट्रोजन स्थिरीकरण का कार्य करते हैं। यद्यपि ऐसे जीवाणुओं की संख्या काफी हैं, पर Azotobacter व Azospirillium नामक वंशों की जातिया फसलों के उत्पादन में विशेष लाभकारी जानी गई हैं। इनको यदि बोये जाने वाले बीजों में inoculate किया जाय तो पैदावार काफी बढ़ जाती हैं।

ब) फॉस्फेट घोलने वाले जीवाणु (Phosphate

solubilizing Bacteria)मिट्टी में उपस्थित आटोट्राफिक व हिटरोट्राफिक Autotrophic or heterotrophic जीवाणु चयापचय क्रियाओं से अकार्बनिक फॉस्फेट को घोलने की क्षमता रखते हैं जिसे पौधे आसानी से ग्रहण कर सकते हैं। जीवाणुओं में यह क्षमता भिन्न भिन्न होती हैं। Bacillus, Pseudomonas, Brevibacterium, Acrobacter, Nitrobacter, Escherichia आदि की जातियां इस प्रकार के मुख्य उदाहरण हैं। फॉस्फेट युक्त जैविक खाद सबसे पहले रूसी वैज्ञानिक ने Bacillus megaterium नामक जीवाणु से बनाई थी तथा उसका नाम Phosphobacterin रखा था।

3. फंगल बायोफार्टिलाइजर (Fungal Biofertilizers) : कवकों द्वारा प्राप्त जैविक खाद जिसे Mycorrhizae कहते हैं, कवक व पौघों की जडों में सहभागिता का परिणाम हैं। यह सहभागिता लगभग पूरे वनस्पति जगत में पाई जाती हैं। पौधों व उपस्थित कवकों की क्षमता के आधार पर मुख्य रूप से तीन प्रकार की सहभागितायें मानी गई हैं।

अ) वेसीकुलर–आर्बस्क्युलर (Vesicular-Arbuscular) : यह कवकों व पौधों के बीच पाया जाने वाला सबसे गहन संबंध हैं। इसमें कवक जाल का बड़ा भाग पौधों की अंत:कोशिकाओं में विशिष्ट प्रकार की रचनाओं (चूषक) से मूलतत्व (Protoplast) से संबंध स्थापित कर लेता हैं। इस प्रकार के कवकों में Gigaspora, Glomus,Acaulospora, Sclerocystis नामक वंशों की जातियां हैं। ये सभी वंश Glomales गण के सदस्य हैं। ये स्थलीय परिस्थिति तंत्र के स्थायी सदस्य हैं तथा सभी महत्वपूर्ण फसलों वाले पौधों की जड़ों में पाये जाते हैं। ये पौधों को फॉस्फेट जैसे तत्वों की उपलब्धि करवाते हैं।

ब) इरिकोइड (Ericoid-Ericales) इरिकेल्स (Ericales) गण के पौधे संसार के सभी भागों में पाये जाते हैं। ये सभी मिट्टी में मौजूद कवकों की कुछ जातियॉ के साथ Mycorrhizic association बनाते हैं। कवकों की ऐसी जातियों को Ericoid fungi के नाम से भी जाना जाता हैं। इनके कुछ उदाहरण Hymenoscyphus ericae, Myxotrichum Setosum तथा Acrimonium strictum हैं जो Leotiales, Onygenales व Hypocreales नामक गणो के सदस्य हैं। ये कवक बुरांस की जातियों के (Rhododendron) पौधोंकी जड़ौं के साथ संबंध स्थापित कर, उन्हें पोषक तत्व उपलब्ध करवाते हैं। इस कारण ये पौधे अकार्वनिक नाइट्रोजन की कमी वाले स्थानों पर भी भली भांति उग सकते हैं। इन कवकों के तन्तुजाल कोशिकाओं के भीतर प्रवेशकर ल्यूमेन में वर्तुलाकार रूप में स्थापित हो जाते हैं जिससे कोशिकाओं में काफी बदलाव आ जाता हैं। इस प्रकार के कवक चूंकि पूर्ण रूप से पौधों पर आश्रित होते हैं अतः कृत्रिम रूप से इन्हें नही उगाया जा सकता। इनकी पहचान मुख्यतया मिट्टी में उपस्थित बीजाणुओं द्वारा संभव हैं। इनको जैविक खाद के रूप में विकसित करने में बड़ी बाधा हैं। इस खाद के प्रयोगसे औषधीय पौधों में पाये जाने वाले

उपयोगी तत्वों में वृद्धि हो जाती हैं। तथा पौधे बीमारी से रक्षा करने में भी सक्षम होते हैं।

इन कवकों से युक्त जड़ों को, पौधे लगाने के लिये बनाये गये स्थानों (छिद्रों) में रख दिया जाता हैं तथा बीज बो दिया जाता हैं।

स) एक्टोमाइकोराइजा (Ectomycorrhizae) : जंगल में उग रहे कई पेड़, झाड़ियां यहां तक कि शाक भी जड़ों के माध्यम से कवकों के साथ सहभागिता संबंध स्थापित कर लेते हैं। इस प्रकार के संबंधों में कवकों के तन्तु जड़ों की सतह पर एक पर्त बना लेते हैं जिसमे तन्तु निकल कर कोशिकाओं के बीच के खाली स्थान में प्रविष्ट हो जाते हैं। इस सारी रचना को Hartig net कहते है। इस प्रकार के संबंध कई अंत व बाहय कारणों पर निर्भर करते हैं जिनमें होस्ट पौधों द्वारा Carbohydrate की आपूर्ति मुख्य है। Ectomycorhizic संबंधों वाले पौधे पानी की कमी सहन करने में सक्षम होते हैं। कृत्रिम खाद की अधिकता व छाया ऐसे संबंधों में बाधक होती है जिससे पौधों में बौनापन व पीलापन आने जैसी बीमारियां हो सकती हैं। इस प्रकार के कवकों में Amanita, Russula, Lactarius, Leccinum Suillus तथा Cortinarius की जातियां मुख्य हैं।

द) एक्टीनोराइजल (Actinorrhizal) : इस प्रकार के संबंध Frankia नामक कवक जो कि Actinomyces श्रेणी का सदस्य है, में ही ज्ञात हैं। यह Casurina, Alnus आदि की जड़ों के साथ ग्रंथियाँ बनाता है। छोटे पौधों की जड़ों को Frankia की ग्रंथियुक्त घोल में डुबा दिया जाता है या फिर उपरोक्त घोल को पौधे लगाने के स्थान पर डाल दिया जाता है। हाल ही में Aspergillus की कुछ ऐसी जातिया खोज ली गई हैं जो फॉस्फेट जैसे तत्वों को घोलकर पौधों को उपलब्ध करवा सकती हैं।

4. नील हरित शैवाल (Blue green algae): Anabaena, Nostoc, Scytonema, Calothrix, Aulosira, Nidularia, Lyngbya तथा Mastigocladus की जातियां नाइट्रोजन स्थिरीकरण करती हैं। अधिक पानी वाली फसलें जैसे धान, उपरोक्त शैवालों के सान्निध्य में उगती हैं। जिन स्थानों में धान की खेती होती है, वहां ये स्वाभाविक रूप से उपस्थित रहते हैं करंतु नये स्थान पर धान लगाने के एक सप्ताह पश्चात् इनके सूखे टुकड़े बीज के रूप में खेतों में डाल देते हैं जों जैविक खाद का कार्य करते हैं।

वृक्षोंका आयुर्वेद

सुख सागर
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
इलाहाबाद

जहाँ एक ओर वृक्ष चिकित्सा करते हैं हमें स्वस्थ रखते है, वही दूसरी तरफ उनमें भी प्राण एवं चेतना होती है तथा उन्हें भी स्वस्थ रखने की आवश्यकता होती हैं।

लोक जीवन में निहित अनेक गहरे विश्वास इस आस्था के द्योतक है कि ये वृक्ष, ये लताएं, सभी हमारे सहचर है।

जैसे मानव जीवन में प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान ये पंचप्राण विभिन्न कार्य करते है ऐसे ही इन वृक्षों में भी कार्यरत रहते है। स्पर्श, शब्द, रूप, रस और गन्ध नामक तन्मात्राओं का भी वृक्षो में निवास है। शुक्ल, कृष्ण, रक्त, नील, पीत, अरूण, ह्रास्व, दीर्घ, स्थूल, चौरस, अणु, ब्रन्तवान नामक बारह ज्योतियों का अनुभव भी वृक्षों को होता है। अचेतन समझे जाने वाले ये वृक्ष चेतना संयुक्त होने के कारण ही कठोर, चिकने, श्लक्षण, पिच्छल, मृदु, दारूण, उष्ण, शीत, सुख, दु:ख, स्निन्ध तथा विशद – इन बारह गुणो का अनुभव करते है, इन गुणों के उप गुणों को भी वृक्ष महसूस करते है।

वृक्षों में इष्ट, अनिष्ट, मधुर, कटु, स्निग्ध, रूक्ष, निर्हारीया (बाहर निकालने वाला), और विशद – नौ प्रकार की गन्ध 'सुगन्ध' के रूप में होती है।

नगर, जंगल और पहाड़ों पर उत्पन्न होने वाली औषधियों प्राण के रूप में है, अत: वृक्ष प्राणी ही है, वृक्षो में त्वक, मांस, मज्जा, स्नायु और अस्थियों के रूप में तेज, जठराग्नि चक्षु, उष्मा और कोध भी होता है, आकाश के अंश श्रोत, घ्राण, मुख, हृदय, कोष्ठ, वृक्षों में भी है, कफ, पित्त, वसा, श्वेत, शोणिक, श्लेष्मा ये सब वृक्षों में भी पाये जाते है।

जिस तरह से धातुओं और गुणों के विक्ल बिषम होने से मानव शरीर में रोगों की उत्पत्ति होती है और उनके लिए चिकित्सा का विधान है–ठीक उसी प्रकार वृक्षों की चिकित्सा का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है।

वृक्ष रोपण हेतु उचित जलवायु और मृदा के प्रकार की जानकारी अति आवश्यक है तभी वृक्ष स्वस्थ तथा ठीक प्रकार से फलते फूलने है। वृक्षों के फलने फूलने का चन्द्रमा से भी सम्बन्ध है, अत:

आरोपण से पूर्व चन्द्रस्तुति तथा उत्तरा, स्वाति, हस्त, रोहिणी, श्रवण, और मूल आदि नक्षत्रों को प्रशस्त माना गया है। जल के देवता वरूण, मेघो के देवता इन्द्र, और पालन कर्ता विष्णु भगवान का पूजन करते हुए नीम, अशोक, पुन्नाग, शिरीष, प्रियंगु, कदली, जम्बू, वकुल, और अनार आदि वृक्षों का आरोपण करके ग्रीष्म ऋतु मे प्रातः, वर्षा ऋतु में भूमि के सूख जाने पर और रात्रि के समय तथा शीत ऋतु मे दिन के समय सीचना चाहिए। बड़े वृक्षों को एक दूसरे से बीस बीस हाथ का अन्तर उत्तम होता है।

तिल बोने के बाद जब फुलने लगे तब उनका मर्दन करके भूमि को तैयार करना चाहिए, तथा घृत, खस, तिल, शहद, वायविडंग, दूध और गोबर इन सबको मिला कर जड़ से लेकर वृक्ष के डाल तक लेपन करके एक स्थान से दूसरे स्थान मे लगाना चाहिए। जिन वृक्षों की शाखा उत्पन्न नहीं हुई है उन्हें शिशिर ऋतु में और जिनकी शाखा हो गयी हो उनको हेमन्त ऋतु में लगाना चाहिए। बड़े बड़े डाल वाले पौधों को वर्षा ऋतु मे लगाना चाहिए। कटहल, अशोक, लिकुच दाणिम, पलिवत, विजोरा, मुक्तक आदि वृक्षों की कलम को गोवर से लेप कर लगाना चाहिए और शीत काल में एक दिन के अन्तर से सीचना चाहिए। उपयुक्त सेचन से पौधों को कही लगाने से सूखते नही।

बहुत शीत और तेज धूप में वृक्ष रोगी होते है तब उनके पत्ते पीले होकर गिरने लगते है अंकुर नही बढ़ते, डाल सूखने लगता है तथा वृक्षों से रस जैसे पदार्थ टपकने लगता हैं। रोगी वृक्षों के सड़े और सूखे अंग को सावधानी से काट कर गिरा देना चाहिए कीमती वृक्ष को बचाने के लिए वायविडंग, घृत और कीच को मिला कर वृक्षों में लेप लगा कर एवं बाद में दूध मिश्रित सिंचाई करनी चाहिए। ऐसा करने से वृक्ष रोग मुक्त हो जाते है।

घने वृक्ष फलहीन होते है इसलिए बड़े वृक्षों को एक दूसरे से बारह हांथ की दूरी पर ही रखना चाहिए क्योंकि बहुत समीप होने से वृक्षों की जड़े एक दूसरे से मिल जाती है।

इमली के बीजों को इक्षुदण्ड से पीस कर जल में घोलने के बाद नारियल के जल तथा शहद को जल में मिला कर यदि आम के वृक्ष को सीचा जाय तो वह तेजी से बढ़ते है। इस प्रकार वृक्षों के लिए उपयुक्त उपचार औषधि का कार्य करता है।

वृक्षों के फलों का नाश होने पर कुलथ उड़द, मूंग तिल और जौ को दूध में डाल कर उवाले और ठन्ढा करके वृक्षो को सीचने से उनके फूल और फल की वृद्धि होने लगती है। कीमती वृक्षों को यदि उड़द, जौ मूंग तिल और घृत से मिश्रित जल से सीचा जाय तो सदैव फूलों ब फलों की वृद्धि होती रहती है। भेड़ और बकरी के मल का चूर्ण तथा तिल को जल में डाल कर सात दिन तक रखें इसी मिश्रित जल से वृक्षों की सिंचाई करने से भी वृक्ष के फूल और फल में बढौत्तरी होती हैं।

मछली वाले बर्तन का पानी, विडंग और चावल को एक साथ मिलाकर वृक्ष को सीचने से वृक्ष रोग का नाश होता है।

वृक्षों में निहित चेतना को आज अनेक वैज्ञानिक अविष्कारों के द्वारा सिद्ध किया जा चुका है, मधुर राग और रागिनियों के गायन से वे हमारी ही तरह से प्रसन्न होते है तथा व्यर्थ में पीड़ा पहुंचाने वालों के पद चाप से ही वे मुरझाने लगते है।

मानव जीवन अपने भौतिक अस्तित्व के लिए वनस्पति जगत पर पूर्णतया आश्रित है तो उनका भी यह दायित्व बनता है कि वह इनके संवर्द्धन में सदैव प्रयत्नशील रहें।

मौलिंग राष्ट्रीय उद्यान–एक पूर्वावलोकन

कुमार अम्बरीष, बुरूताम एवं ए. के. वैश्य
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण,
अरूणाचल फील्ड स्टेशन, इटानगर।

अरूणाचल प्रदेश की प्राकृतिक वादियों में रचा बसा मौलिंग राष्ट्रीय उद्यान अपनी विशाल जैव विविधता एवं विषमता के दृष्टिकोण से एक अनूठी मिशाल प्रस्तुत करता हैं जिसका मुख्य कारण यहाँ के घने जंगल, जंगली जानवर एवं विषम पर्वतीय भौगोलिक परिस्थितियां जैसे अत्यधिक वर्षा, खड़े पहाड़ व रास्तो का अभाव है। इस उद्यान में मानव गतिरोध लेशमात्र ही देखने को मिलता है। क्योंकि उद्यान के भीतर तक जाना अतिदुष्कर है। जिससे यहां की जैव विविधता प्राकृतिक रूप से और भी संरक्षित होती रही हैं। इन्हीं विशेषताओं के कारण इस विलक्षण पर्वतीय वन आच्छादित क्षेत्र को सन् 1986 में भारत सरकार ने राष्ट्रीय उद्यान का दर्जा दिया है। जिसका कुल क्षेत्रफल 483 वर्ग कि मी है।

यह उद्यान मुख्यतः अपर सियांग जिले में स्थित है लेकिन इसका कुछ भाग पश्चिम सियांग जिले में भी आता है जो इटानगर से लगभग 430 कि. मी. की दूरी पर स्थित हैं। भौगोलिक रूप से यह 27.43 – 29.20– उत्तरी अक्षांश और 94.42–95.35 पूर्वी देशांतर के मध्य स्थित हैं। जैंगिंग जहां से पार्क की दूरी लगभग 30 कि. मी. हैं इसका मुख्यालय है। उद्यान जिसमें उष्ण कटिबंधीय सदाबहार वनो से लेकर समशीतोष्ण व शीतोष्ण वन तक पाये जाते हैं। भौगोलिक परिस्थितियों के कारण इस उद्यान का व्यापक सर्वेक्षण अभी अधूरा है तथा यहाँ की जैव विविधता की जानकारी अभी कम ही उपलब्ध है। फिर भी समय समय मुख्यतः भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण एवं वनविभाग के वैज्ञानिकों के दलो ने छिटपुट कौशिशें अवश्य की है एवं रोचक आँकड़े एकत्रित किये है।

उद्यान के पर्वतीय क्षेत्र में उच्च एवं निम्न, खड़े व ढ़लुआ (rugged) पहाड़ हैं। इसकी सबसे ऊँची चोटी समुद्र तल से लगभग 3064 मीटर ऊंची है। जिसे ''मौंलिग पीक'' के नाम से जाना जाता हैं। जिसकें नाम पर उद्यान का नाम ''मौलिंग राष्ट्रीय उद्यान'' रखा गया। ''मौलिंग''यहाँ की स्थानीय जनजाति 'आदी' का एक शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ है 'रेड पायजन'। यह इसी उद्यान की किसी

वनस्पति का सत्व (Extract) है जिसकी जानकारी अभी तक नही है। मौलिंग पीक को भी ऊँचाई के आधार पर निम्नलिखित तीन भागों में वाँटा जा सकता हैं :

–गैंगिंग मौलिंग (सबसे ऊँची चोटी, ऊँचाई लगभग 3064 मीटर)

–मरांग मौलिंग (ऊँचाई लगभग, 2940 मीटर)

–शिवाम मौलिंग (ऊँचाई लगभग, 2745 मीटर)

उद्यान को प्रबंधन के आधार पर तीन परिक्षेत्रो में विभक्त किया गया है।

1. राम सिंग रेंज
2. जैंगिंग रेंज
3. बोलेंग रेंज

1. राम सिंग रेंज : उद्यान की सीमा के लगभग 35 कि. मी. नीचे बसे रामसिंग गाँव के नाम पर ही इस परिक्षेत्र का नाम ''राम सिंग रेंज'' रखा गया। पूर्व से दक्षिण पश्चिम की ओर वृहद् सियांग नदी बहती है। इस परिक्षेत्र से और छोटे–२ नदियाँ व झरने बहते है. जिनमें सिरिंग, सिमोंग, किवंग, अगोंग व सितिक प्रमुख है जो अंततः सियांग नदी में मिल जाते है। निकटवर्ती गाँवो में बोमडो, जानवो आदि प्रमुख है जहाँ पर आबादी अधिक है। इस परिक्षेत्र में वनस्पतियों एवं वन्यजीव जन्तुओं की अनेकों प्रजातियाँ बड़ी संख्या में है। जिनसे टर्मिनेलिया मायरोकार्पा, ट. ट्बुला, दुआबंगा ग्रेंडीफ्लोरा, एलबीजिया प्रोसेरा, बाहुनिया परप्पूरिया, विचकोफिया, जभानिका डायसोजाइलम हैमिल्टोनी, इलिओकार्पस. ऐरिस्टाट्स आदि इस क्षेत्र की प्रमुख वृक्ष जातियाँ है। इसके अतिरिक्त जंगली जानवरों की कुछ दुर्लभ जातियाँ जैसे टॉकिंग, सीरो, गौराल, काला भालू व साँपों की कुछ जातिया जैसे किंग कोबरा, नरबा, पाइथन पिटवाइपर, क्रे त आदि प्रमुख हैं।

2. जैगिंग रेंज :

उद्यान का मुख्यालयं जैगिंग जो कि एक सुंदर छोटा कस्वा है व इसका मुख्यालय भी है के नाम पर ही इस परिक्षेत्र का नाम जैंगिग रेंज रखा गया। क्षेत्रफल की दृष्टि से यह क्षेत्र उद्यान का सबसे बड़ा मध्य भाग है जिसमें योर्कू, यिंगकोंग, सिराप, सिकिरमडिंग, सीपो आदि छोटी बड़ी नदियाँ व जलप्रपात दृष्टिगोचर होते हैं। निकटवर्ती गाँवो में कीर्को, मोइंग आदि प्रमुख हैं। जैव विविधता की दृष्टि से यह भाग भी अति समृद्ध है जिसमें उपरोक्त के अतिरिक्त मुख्य वृक्ष टर्मिनेलिया बल्लीरिका, ट० सिट्राना, सिजिजियम क्यूमिनाई, सौरुया नेपालेनसिस, सौ० पंडुआना, वैंडलेनडिया टिंकटोरिया, रैहमंस नेपालेन्सिस, अर्टोकारपस हेट्रोफिल्ला, रस र्पविफ्लोरा,क्वेरकस्, मिल्यूसा रौक्सर्बघियाना आदि प्रमुखः हैं। जंगली जानवरों में क्लाउडेड्, लीपर्ड, रेड पांडा, जंगली बिल्ली, जंगली कुत्ता, बार्किंग डीअर व साँपो की विभिन्न प्रजातियाँ आदि पाये जाते हैं।

बोलेंग रेंज :

बोलेंग परिक्षेत्र का मुख्य भाग ही पश्चिमी सियांग जिले में स्थित हैं। बोलेंग यहाँ से करीब 100 कि. मी. दूर, एक छोटी सी बस्ती हैं। बोलेंग से 80 कि.मी. की दूरी पर युबुक नाम ग्राम हैं जहाँ तक वाहन हेतु एक कच्ची सड़क जाती है। युबुक से लगभग 15 कि. मी. की दूरी पर एक और छोटा सा गाँव लिसिंग है। जो पार्क की सीमा से सटा हुआ है। यहाँ जाने के लिये केवल एक पैदल मार्ग है। इसी गाँव से लगभग 5 किमी की दूरी पर पार्क का क्षेत्र प्रारम्भ हो जाता है। यहाँ से घने जंगलों को पार करके मौलिंग पीक के दर्शन हो जाते है। लेकिन पीक पर पहुँचने के लिये यहाँ से कम से कम एक हफते का समय व कठिन परिश्रम चाहिये साथ ही विषम परिस्थितियों को झेलने का साहस क्योंकि कदम-२ पर जंगली जानवरों विशेषकर भालू, चीता व बाघों के हमला करने का खतरा बना रहता है।

उपरोक्त परिक्षेत्र में वर्णित वनस्पतियों के अतिरिक्त यहाँ अेब्रोमा अंगुस्ता, अमूरा वालिचियाई, लिट्सिया सिट्राटा, डलबरजिया असेमिका, इलिओकार्पस राबुस्टस, सिन्नामोमम ग्लेंडुलिफेरम, इरिथ्रीना स्ट्रीक्टा क्वेरकस स्पाईकाटा, बेटुला आदि प्रजातियों के वृक्षों की बहुलता हैं।

उद्यान की वन एवं वनस्पतियाँ :–

उद्यान के परिधिय क्षेत्र (peripheral zone) में मुख्यतः ऊष्णकटिबंधिय सदाबहार वन (Tropical evergreen forest, 300-900 M M S L) व उपोष्ण कटिबंधिय वन (Sub-tropical forest, 900-1800 M MSL) ही दृष्टि गोचर होते हैं। जिसका मुख्य कारण यहाँ अत्यधिक वर्षा का होना, जो मार्च से शुरु होकर अक्टूबर - नवम्बर तक चलती है प्रतीत होता है। उद्यान के मध्य में ज़ैसे-२ ऊँचाई बढ़ती हैं समशीतोष्ण एवं शीतोष्ण वन (1800-3500 M MSL) (Warm Temperate and Temperate Forest) देखे जा सकते हैं। लेकिन इनमें विशुद्ध शंकुधारी वनों (Conifer Forest) की अल्पता हैं।

ऊष्ण कटिबंधिय वन :

इस प्रकार के वनों में विशेषतया नदियों एवं निम्न ऊँचाई वाले क्षेत्रों में उगने वाली मुख्य वनस्पतियाँ कुछ इस प्रकार हैं।

टर्मिनेलिया मायरोकार्पा, टर्मिनेलिया छेबुला, दुआबंगा ग्रेंडीफ्लोरा, बिचकोफ्यिा जभानिका, इलिओकार्पस ऐरिसटाटस्, डायसोजाइलम हैम्लिटोनी, सिजिजियम क्युमिनी, बुडलेजिया एशियेटिका, सौरूया नेपालेनसिस, सौरूया पंडुआना, अरटोकार्पस हिट्टरोफिल्ला, वैंडलैडिया टिंकटोरिया, रैहमनस् नेपालेनसिस, रस पर्विफ्लोरा, क्लेरोडैन्ड्रम कोलेब्रोकियेनम, मुसांडा रौकसबर्गाई, डेस्मोडियम लेकजीफ्लोरम, डे० ट्राईएगुंलरी इक्जोरा सबससाइलिस, रूबस एल्सीफोलियस लैसाइन्थस वाली चियाई, पोलीगोनम हाइड्रोपाइपर, पो० स्ट्रोगोसम, सीट्रस, पाइपर, डैंड्रोकैलेमस, डायोसकोरिया, स्ट्रोबिलैन्थस, यूपाटोरियम, वाइटिस अनकेरिया,

स्टीफेनिया, लायकोपोडियम, एस्पीलीनियम वाँडा, डैंड्रोवियम, बल्बोफिल्लम, सिलोगाइन आदि की प्रजातियाँ।

उपोष्ण कटिबंधिय वन :-

उद्यान का अधिकांश भाग इसी प्रकार के वनों से आच्छादित है जो मानव गतिरोधों से परे होने के कारण पूर्णतया कौमार्य Virgin व सघन है। इस क्षेत्र में वर्षा, कोहरे एवं घने बादलों का प्रभाव यहाँ की वनस्पतियों पर भी पड़ा है। जिससे यहां बहुत ठंडे व छायादार वास स्थलों में उगने वाली वनस्पतियों की बहुलता हैं। यहाँ पर लौरेसी, फैबेसी, मैंगनोलिएसी, एक्वीनाइडेसी रुबीएसी, आर्किडेसी, मैनीर्स्पमेसी आदि कुलों के पौधों की व्यापकता देखने में आती है। जिनमें मुख्य वनस्पतियाँ निम्न प्रकार है।

क्वेरकस स्पाइकाटा, लीथोकार्पस डेलबाटा, ऐसर एक्यूमिनेटम, मैंगलीशिया, परसिया, ऐल्टिंजीया एक्सल्सा, कैस्टोनापसिस ट्राईबुलाइडिस, कै० आक्टुसि फोलियम, लिट्सीया सिट्राटा, माइल्यूसा राक्सर्वधियाना, स्केफैलैलरा वेन्यूलोसा, मैडीनेला रुबीकुंडा, उसबेकिया स्टेलाटा, जैंथोजाइलम, मैंग्नोलिया सिजिजियम, इलियोकार्पस, यूराया, फाइकस, यूरोफिल्ला, पाइपर, मिलिटिया, एम्बेलिका फ्लोरीबंदा, ऐ. रिबेंश, सिस्मप्लोस, 'स्टीफेनिया, अनकेरिया ऐसीलीफरकट्स, आक्सीस्पोरा पेनीकुलाटा, वरनोनिया वोल्कैमैरीफोलिया, कैनेरियम स्ट्रीक्टम, अमूरा वालिचियाई, तूना सिलेटा, इरिथ्रिना स्ट्रीक्टा, पेडेरिया फोइटिडा, म्युकुना मैकरोकार्पा, क्लेमैटिस, चिरैता प्युमिला आदि।

सम शीतोष्ण एवं शीतोष्ण वन :

उद्यान के ऊँचाई वाले क्षेत्रों में (1800 M MSLसे अधिक) इस प्रकार के वनों की बहुलता देखने को मिलती हैं। जिनमें क्वेरकस सेमीसेराटा, वेटुला ऐलेनाआइडिस, लीथीकार्पस, ऐसर, नेपालेनसिस, मैगंनोलिया ऐक्सबकलैंडिया पापुबिनिया, एंगलहरडिया स्पाईकाटा स्केफेलेरा वेन्यूलोसा, टैक्सोकार्पस, ब्रेसाइओप्सिस, बाइब्रुनम,लिंड्रिया, एरिसिया, प्लेगियोगापरा, ओसमुंडा एकोनिट्म, पॉलीगोनम, आकसेलिस, ड्राईमेरिया, क्राइफोरडिया, क्लीमेटिस, होलबोइला, गोलथीरिया सिन्नामोनम, पोपुलस, एनाफेलिस, लिट्सिया, रोजा, फोटिनिया, हाइपरिकम, सीसमप्लोस, डायोसकोरिया, ऐकोनिट्म फैटाक्स, वर्जीनिया, बिगोनिया, डैड्रोकैलेमस, कैलेमस इरेक्टस, साईजोस्टुकियम, इरिया, डेंड्रोबियम, गुडेयरा, बल्बोफिल्लम आदि।

वनस्पतियों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि उद्यान में विभिन्न वर्गो के पौधे एवं प्राचीन जातियाँ जैसे सायेथिया, मैंगनोलिया नीटम, ग्रीफीथिया आदि के साथ-२, एनोनेसी कुल के पौधे जैसे मिल्यूसा, फिस्सस्टिग्मा, गोनियोथैलमस आदि बहुतायत में मिलते है। विभिन्न पाम जैसे लाइविस्टोना और वालिचिया कैरियोटा केलेमस व मूसा की विभिन्न प्रजातियाँ भी बहुलता लिये हुए हैं। नम मौसम व उच्च आर्द्रता के

कारण यहाँ पर पर्णागों मौस, लाइकेन व आर्किडो की भी भारी तादाद हैं जो पार्क के मध्य में अधिक हैं।

इन्हीं वानस्पतिक विविधताओंसे समृद्ध इस राष्ट्रीय उद्यान की वन एवं वनस्पतियों के सर्वेक्षण हेतु मुझे (प्रथम लेखक) व द्वितीय सह लेखक के साथ अक्टूबर 2003 में एक 15 दिवसीय सर्वेक्षण का अवसर प्राप्त हुआ। जिसमे हमने विभिन्न प्राकृतिक कठिनाइयों को झेलते हुए उद्यान की रामसिंग व जैंगिग परिक्षेत्र में गहन पादप सर्वेक्षण करते हुए 500 से उपर पादप नमूने एकत्रित किये। जिनमें विभिन्न प्रकार के वृक्षों, आरोही लताओं क्षुपो, शाकों व विभिन्न रंग विरंगे मनमोहक आर्किडों की विभिन्न जातियाँ सम्मलित हैं। सर्वेक्षण के दौरान हमने जिन क्षेत्रों का दौरा किया उनमें बोमडों वस्ती से लगभग 16 कि. मी. दूर खड़ी चढ़ाई चढ़के घने जंगल में उद्यान का ''इगोंग बेस कैंप'' आजीवन याद रहैगा जो उद्यान की रामसिंग रेंज में आता हैं। यह कैंप उद्यान के अधिकारियों ने सन 2002 में रात्रि विश्राम हेतु वनबाया था जो टोको पत्ता व बाँस से बनी हुयी एक साधारण झोंपड़ी हैं। यहाँ से उद्यान क्षेत्र का सर्वेक्षण करके वापस रात्रि विश्राम किया जा सकता हैं। यहाँ हमने रोचक पौधों लताओं, आर्किडों आदि के 100 से अधिक नमूने एकत्रित किये। इसके अतिरिक्त कीको, मोंइग, जानवो आदि क्षेत्रों में भी सर्वेक्षण कार्य के दौरान विभिन्न प्रकार के पादप नमूने एकत्रित किये गये। हालाकिं सभी नमूनों की पहचान अभी नही हो पायी है एवं कार्य प्रगति पर है।

उद्यान में कुछ संकटग्रस्त जातियाँ जैसे एंजियोप्टेरिस इवेक्टा, ऐंटाडा पुरसेथिया फिस्सस्टिगमा पोलीएंथम, बोट्राइकम, सायऐथिया, लाइविसटोना जेंकिनसियाना, मोनोट्रोपेस्ट्राम यूनिप्लोरा ग्रिफिथीया फ्युस्का आदि भी संरक्षित हो रही हैं।

भारत सरकार के पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के जैव विविधता के संरक्षण कार्यक्रम को सफल बनाने में इन आरक्षित क्षेत्रों का योगदान अमूल्य है। इन उद्यानो में हमारे भविष्य का धरोहर फल फूल रही हैं। यह अपने मूल स्वरूप में बनी रहे इसके लिये उद्यान प्रबंधन अधिकारियों एवं जनमानस का सहयोग अति आवश्यक है। मौलिंग राष्ट्रीय उद्यान की जन्तु एवं वनस्पति संपदा भविष्य में और अधिक समृद्ध होगी, ऐसी हम आशा करते है।

दशमूला पादप जातियों का परिचय एवं संरक्षण

बी. के. शुक्ल एवं जी. पी. सिन्हा
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

मानव आदिकाल से ही अपनी दैनिक जीवन की आवश्यकताओं जैसे भोजन, वस्त्र, मकान एवं औषधियों के लिये वनों पर निर्भर रहा है। आज भी विश्व के प्रायः सभी विकाशसील देश अधिकतर पारम्परिक तरीके से ही अपने स्वास्थ्य की देखरेख में वन औषधियों का प्रयोग करते है। भारत में करीब 7500 पौधों की प्रजातियाँ औषधीय प्रयोग में लाई जाती हैं। इनमें 33% वृक्ष, 32% शाकीय, 20% झाड़ीदार, 12% लताये एवं 3% अन्य पौधों का प्रयोग होता है। औषधि के रूप में पौधों के विभिन्न भागों जैसे पत्ती, फूल, फल, बीज जड़, तना, छाल, गोंद एवं सम्पूर्ण पौधे का प्रयोग किया जाता हैं।

दशमूला एक प्रसिद्ध आयुर्वेदिक, स्वास्थ्यवर्धक दवा है, जिसमें दश औषधीय पौधों की जड़ों का प्रयोग होता है। दशमूला का प्रयोग आसव, आरिष्ट चूर्ण एवं काढ़ा के रूप में होता हैं। यह दशमूलारिष्ट नाम से एक प्रमुख औषधि के रूप में बाजार में उपलब्ध होने के साथ साथ अन्य बहुत सी आयुर्वेदिक औषधियों एवं च्यवनप्राश में भी डाला जाता है। नाम के अनुरूप इसमें प्रयोग आने वाले दस पौधों में पाँच शाकीय होते हैं एवं अन्य पाँच पौधे वृक्ष होते हैं। शाकीय पौधे कमोवेश रूप से प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। परन्तु वृक्ष अधिकतर जंगलों में मिलते हैं। जड़ों के प्रयोग के कारण इन पौधों को समूल निकालना पड़ता है, जिसके कारण इन पौधों के प्राकृतिक सन्तुलन पर भी असर पड़ता हैं। इन्हीं कारणों से इसमें प्रयोग में आने वाले वृक्षों का जीवन संकटग्रस्त हो चुका हैं। इनके प्राकृतिक एवं नियमित स्रोत को बनाये रखने के लिये अत्यधिक मात्रा में रोपण एवं संरक्षण की आवश्यकता हैं। जिनसे भविष्य में इन वृक्षों की कमी न हो सके एवं आने वाली पीढी को समुचित मात्रा में प्राप्त हो सके।

दशमूला प्रमुख रूप से गैस्ट्रिक, श्वसन, ह्रदय रोग, स्नायुतंत्र, मूत्र विकार, पाचन तंत्र, वात विकार, वीर्यवर्धक, पेट संबंधी रोग,उदेष्ट रोंधी आदि रोगों में लाभप्रद हैं एवं यह दर्द निवारक के रूप में भी प्रयोग में लाया जाता हैं। यह नई कोशिकाओं का शीघ्रता से सृजन करता हैं। इसके अतिरिक्त यह सर्दी,

जुकाम, सर दर्द एवं इनफ्लूएंजा आदि रोगों को दूर करता हैं। दशमूल के अन्तर्गत आनेवाले सभी पोंधों के संक्षिप्त परिचय के साथ साथ इनकी औषंधीय गुण एवं प्राकृतवास से पाठकों का परिचय करवाना भविष्य में इनके संरक्षण एवं उपयोग के लिए हितकर होगा।

1. **डेसमोडियम् गंगेटिकम (सालपान)** : पैपिलनियोसी कुल का यह पौधा 30-90 लम्बा होता हैं। इसकी पत्तियाँ 3-5 x 2-9सेमी, अण्डाकार अथवा भालाकार होती हैं। इसके पुष्प सफेद वा हल्के गुलावी रंग के होते हैं एवं फल जोडों दार फली के आकार के होते हैं।

औषधीय गुण : तंत्रिका, तंत्र, वल वर्धक, मूत्र जनित रोग, ह्रदय संबंधी रोग, बुखार, खाँसी, दमा, गठिया आदि रोगों में लाभप्रद हैं।

प्राकृतवास – हिमालय के निचले हिस्से से लेकर देश के सभी प्रान्तों में पाया जाता हैं।

2. **यूरेरिया लैगोपोडियाडिस (दोला)** : पैपिलनियोसी कुल का यह लतादार या झाड़ीदार पौधा 20-40 सेमी तक लम्वा होता है एवं इसका तना काष्ठवत होता है। इसकी पत्तियाँ एक अथवा तीन भागों में विभक्त, 2-10 x 2-7 सेमी, गोल अथवा अण्डाकार होती है। इसके पुष्प हल्के नीले अथवा गुलावी रंग हैं एवं फल 1-2 सेमी लम्बा होता है।

औषधीय गुण – शक्तिवर्धक होने के साथ साथ यह बुखार, अतिसार, जले हुए घाव, टयूमर, अल्सर, हडडी जोड़ने, मलेरिया बुखार एवं सांप के काटने के इलाज में लाभप्रद है।

प्राकृतवास – हिमालय की तलहटी से लेकर सम्पूर्ण भारत में पाया जाता हैं।

3. **सोलेनम् वायलेसियम** (वरहन्ता, भाल-कटेरी) : सोलेनेसी कुल का यह पौधा झाड़ीदार, कंटीला, 60-90 सेमी तक लम्बा होता हैं। इसकी पत्तियां 5-15 सेमी लम्बी, अण्डाकार होती हैं एवं किनारे की ओर कटी फटी रहती हैं। इसके पुष्प बैगनी रंग के होते हैं एवं फल 1-1.5 सेमी ब्यास के होते हैं।

औषधीय गुण – पाचक के रूप में प्रयुक्त होने के साथ फुन्सी, मुख के छाले, ह्रदय रोग, खांसी, दमा, त्वचा के सफेद रोग, पीलिया आदि रोगों में इसका उपयोग किया जाता हैं।

प्राकृतवास – हिमालय की निचली पहाड़ियों से लेकर देश के सभी प्रदेशो में पाया जाता हैं।

4. **सोलेनम वरजीनियानम (भटक्टैया)** : सोलेनेसी कुल का यह पौधा जमीन में छितरा हुआ, पीले काँटों वाला हैं। इसकी पत्तियां लम्बी काँटेदार होती हैं। इसके पुष्प नीले या बैगनी रंग के होते हैं। इसके फल 1.5-2 सेमी ब्यास के होते है एवं यह पकने पर पीले रंग के होते हैं।

औषधीय गुण : खाँसी, दमा, बुखार, पेट संबंधी विकार, बवासीर, मूत्र विकार, हृदय संबंधी रोग में यह लाभप्रद हैं। इसकी जड़े बलवर्धक होती हैं।

प्राकृतवास : प्रायः सभी प्रदेशों में शुष्क स्थानों में पाया जाता हैं।

5. **दिवुलस देस्टिस (गोखरू) :** जायगोफिलेसी कुल का यह पौधा जमीन पर छितरा हुआ होता हैं। इसकी पत्तियाँ 2-4 सेमी लम्बी एवं इसके पत्रक 5-7 जोड़ी में पाई जाती हैं। इसके पुष्प पीले रंग के होते हैं। इसके फल सख्त एवं 2 काँटे पाये जाते हैं।

औषंधीय गुण : बलवंर्धक, मूत्र विकार, खाँसी, कफ, दमा, दर्द त्वचा, का सफेद रोग, हृदय रोग, संबंधी, खून साफ करने में यह लाभप्रद है। मूत्र एवं गुर्दे की पथरी में भी यह लाभप्रद हैं।

प्राकृतवास : सम्पूर्ण देश में प्राय शुष्क स्थानों में पाये जाते हैं।

6. **ईग्ल मार्मेलोस (बेल) :** रूटेसी कूल का यह काँटेदार वृक्ष 6-10 मीटर ऊँचा होता है एवं इसकी छाल हल्के भूरे रंग की होती हैं। इसकी पत्तियाँ संयुक्त एवं तीन पत्रक एक साथ होती हैं। इसके पुष्प हल्के हरे एवं सफेद रंग के होते हैं। इसके फल 8-18 सेमी ब्यास के गोल एवं पकने पर पीले रंग के होते हैं। इसका गूदा पीले रंग का एवं मीठा होता हैं।

औषंधीय गुण : ज्वरनाशक, अतिसार, पेचिश, पेट के सभी विकार, को दूर करता हैं एवं पाचक हैं। साथ में यह दिल के घड़कन को नियमित करता हैं। दमा आदि रोगों में भी यह लाभप्रद हैं।

प्राकृतवास : यह हिमालय की घाटी से लेकर प्रायः देश के सभी प्रान्तों में पाया जाता हैं।

7. **ग्मेलिना आखोरिया (गमारी) :** वरवीनेसी कुल का वह पौधा 12-18 मीटर ऊँचा वृक्ष होता हैं। इसकी पत्तियाँ 6-15 सेमी लम्बी अण्डाकार होती हैं। इसके पुष्प पीले रंग का, ऊपरी हिस्सा तिरछा कटा हुआ प्रतीत होता हैं। इसके फल अण्डाकार, प्रायः 2 सेमी लम्बे एवं पीले रंग के होते हैं।

औषधीय गुण : यह वलवंर्धक एवं कृमिनाशक होता है। यह त्वचा रोग, अल्सर एवं मूत्र जनित रोग में भी लाभकारी हैं इसमें वायरल रोंधी क्षमता पायी जाती हैं।

प्राकृतवास : यह प्रायः देश के सभी प्रान्तों में नम-शुष्क पर्णपाती वनों में पाया जाता हैं।

8. **ओरोक्सीलम इण्डिकम (शेयनक) :** बिग्नोनियेसी कुल का वह वृक्ष 10-15 मीटर ऊँचा होता हैं। इसकी पत्तियाँ संयुक्त एवं शाखाओं के अग्र भाग में लगी रहती हैं। इसके पत्रक लम्बे-अण्डाकार, 7-12 सेमी लम्बे होते है। इसके पुष्प गहरे लाल रंग के होते हैं। इसके फल 50-70 सेमी लम्बे, तलवार के आकार के

होते हैं। बीज के चारों तरफ सफेद पंखनुमा भाग पाया जाता है।

औषधीय गुण : शरीर के घाव के जोड़ने में, गठिया दर्द, सर्दी-जुकाम, खाँसी, टान्सिलाइटिस, अतिसार एवं आँखों की बीमारी में लाभप्रद हैं।

प्राकृतवास : यह प्राय देश के सभी प्रान्तों में परन्तु कम संख्या में पाये जाते हैं।

9. **प्रेम्ना इंटिग्रिफोलिया (अग्निमाथा):** वरविनेसी कुल का यह पौधा 5-9 मीटर लम्बा, झाड़ीदारअथवा छोटे वृक्ष के रूप में पाया जाता हैं। इसकी छाल पीले रंग की होती है एवं तना तथा शाखायें कटीली होती हैं। इसकी पत्तियाँ गोल अथवा अण्डाकार, 4-10 x 2-6 सेमी होती हैं। इसके पुष्प हरे सफेद रंग के होते हैं एवं इसके फल 4-5 सेमी ब्यास के होते हैं।

औषधीय गुण : सर्दी-जुकाम, खाँसी, बुखार, गठिया, पेट दर्द, त्वचा रोग एवं तंत्रिका-तंत्र संबंधी रोगों में लाभप्रद हैं।

प्राकृतवास : यह प्रायः देश के सभी प्रान्तों में पाया जाता हैं।

10. **स्टीरियोस्पर्मम चिलेनोवायडिस (पाटला) :** बिग्नोनियेसी कुल का यह वृक्ष 10-15 मीटर ऊँचा होता हैं। इसकी पत्तियाँ संयुक्त होती हैं। इसके पत्रक अण्डाकार, 5-16 सेमी लम्बे, 3-4 जोड़े में पाये जाते हैं। इसके पुष्प हल्के गुलाबी एवं पीली धारीदार होते हैं। इसके फल तीन धारी युक्त, 15-30 सेमी लम्बे होते हैं। इसके बीज 3-4 सेमी लम्बे होते हैं।

औषधीय गुण : हृदय संबंधी रोगों में एवं मूत्र विकार में लाभप्रद हैं। यह शरीर को ठंडक देता हैं एवं शक्तिवर्धक के रूप में भी प्रयोग किया जाता है।

प्राकृतवास : यह देश के मैदानी भागों में पाया जाता हैं।

वन विनाश के खतरे

आर. के. गुप्ता
भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा

वन हमारी बहुमूल्य निधि है। वन पर्यावरण का एक महत्वपूर्ण घटक ही नहीं बल्कि मानव के अस्तित्व का दारोमदार ही उस पर हैं। वन अथवा जंगल से जुड़े है हवा, पानी, और इससे जुड़ा है मनुष्य। अर्थात् वन और मनुष्य के बीच एक मजबूत अंतः संबंध का होना जरुरी है। वन के बगैर हम अपने अस्तित्व की कल्पना नहीं कर सकते हैं।

गत कई वर्षो से वन और इससे जुड़े अनेक मुद्दे चर्चा का विषय रहे हैं। समाज में जागरूकता लाने के लिये अनेक प्रयास किए गए हैं जिनसे शिक्षा विज्ञापनों और नुक्कड़ नाटको का भी सहारा लिया गया है। मानव चेतना आई भी लेकिन वह पर्याप्त नहीं हैं। वर्तमान वन क्षेत्र केवल 19.27 प्रतिशत भू-भाग में फैला हुआ है जबकि इसका प्रतिशत संपूर्ण भू-भाग का कमसे कम 33 प्रतिशत होना चाहिए। इस स्थिति को सुधारने के लिये ठोस कदम अति शीघ्र उठाने की आवश्यकता हैं।

राज्य स्तर पर देखने से पता चलता हैं कि विहार, झारखण्ड, मध्यप्रदेश, असम गोवा, दमन, दीव, उडीसा, मेघालय जैसे राज्यों के वन क्षेत्रों में कमी आई है, कुछ, राज्यों के वन में कुछ वृद्धि हुई है। जबकि कुछ राज्यो की स्थिति में कोई बदलाव नहीं आया हैं। और उसकी स्थिति ज्यों की त्यों बनी हुई हैं। इससे साफ जाहिर होता है कि वृक्षारोपण के बड़े-बड़े दावे और इसका प्रयास सफल नहीं हो पाया हैं। कारण हैं कि एक तरफ वृक्षारोपण हुआ तो दूसरी तरफ निर्वनीकरण हुआ, परिणाम स्थिति ज्यों की त्यों। आज इस मद्दे पर गहनता से विचार करने की जरूरत हैं कि तमाम कोशिशों के बावजूद हम अपनी वनसंपदा को बढ़ाने में कामयावी क्यों नहीं पा रहे हैं?

इसका एक प्रत्यक्ष कारण बढ़ती जनसंख्या हैं। विकास कार्यो के लिए वन भूमि को गैर वन भूमि में परिवर्तित किया जा रहा हैं। कच्चे मालों के लिए वनों का सफाया किया जा रहा हैं जिससे पारिस्थितिक विषमता आ गई है। इसका सबसे ज्यादा दुष्प्रभाव मौसमी चक्र पर पड़ा है। निरंतर बढ़ते तापमान, कही सूखा, कही बाढ़ इसके मुख्य दुष्परिणाम है। वन

विनाश का एक कारण हैं। पहाड़ी क्षेत्रों में जूम खेती हैं जिसके दूसरे विकल्पो को ढूढने की जरुरत है।।

भारत का क्षेत्रफल विश्व के भौगोलिक क्षेत्रफल का 2.4 प्रतिशत है जबकि यहाँ की जनसंख्या विश्व जनसंख्या की 16 प्रतिशत और पशु संसांधन 15% प्रतिशत है। जीवन से जुड़ी आवश्यकताओं के लिए मनुष्य एवं पशु दोनों का दबाव वन पर पड रहा है। जीवन यापन के लिए स्वच्छ जल, चारा, आवास जैसी मौलिक जरुरते कहीं न कहीं वन से ही जुड़ी हुई है। 1950 के दशक में हमारी जनसंख्या 50 करोड़ थी अब यह सौ करोड़ को पार कर चुकी है। जिस रफ्तार से जनसंख्या बढ़ी है उस रफ्तार से वन के क्षेत्रों में कमी आई है। आज विकास के नाम पर गगनचुम्वी इमारतों को देखा जा सकता है। कल जहाँ पेड़ों के जंगल थे आज वहाँ कंक्रीट के जंगलों (इमारतों) ने अपना स्थान बना लिया हैं। ऐसे में 33 प्रतिशत का लक्ष्य प्राप्त करना एक स्वप्न प्रतीत होता है।

वन विनाश से उत्पन्न खतरे से हम अपने आपको अलग नहीं कर सकते हैं। आज हम अपनी ही करतूतों का परिणाम भोगने के लिए विवश हैं। वृक्षों की कमी से जल में कमी, भूमि क्षरण, वाढ, मरुस्थलों का बढ़ना, मौसम विषमता, पर्यावरण प्रदूषण की समस्याए सामने आयी है। वन विनाश से वायुमंडल की ओजोन परत भी प्रभावित हुई है जो सूर्य की पराबैगनी किरणो को रोकने में सहायक हैं और उन्हें पृथ्वी तक आने नही देती लेकिन ओजोन होल ने इसे नाकाम कर दिया। परिणामस्वरूप नयी-नयी बीमारियों का प्रादुर्भाव हो रहा हैं।

वन विनाश से पशुओं और पक्षियों की कई जातियां विलुप्त हो गई हैं उसमें प्रमुख क्वेगा, ग्रेट ऑक, आउरोच्स, हिम तेंदुआ, जर्डन कोरसर आदि प्रमुख हैं। कई प्रजातियाँ विलुप्त होने के कगार पर खड़ी है। इनके प्राकृतिक आवास में खलल पड़ने से ये अब शहर की और रुख कर रहे हैं। तेंदुओं का गांवों और शहरों में आक्रमण अब आम बनता जा रहा है जिसे आए दिन समाचारों में देखा जा सकता है। पश्चिम बंगाल तथा उत्तरांचल के कुछ जिलों में हाथियों का आक्रमण भी इसका परिणाम है।

जंगल के सिमटनें का एक मुख्य कारण आग भी हैं। प्राय जंगलों कें कहीं कहीं आग लगी रहती हैं। यह अप्रेल और मई के महीनों में खासकर होती हैं जब मौसम काफी शुष्क होता है। कभी प्राकृतिक कारणों से तो कभी दुर्घटना वश आग लग जाती हैं। लेकिन हमारे देश में ज्यादातर मामलों में आग जान बूझकर लगायी जाती है। और अरबों की संपत्ति देखते-देखते राख हो जाती है। आग रोकने के लिए महाराष्ट्र और नैनीताल में अग्नि नियंत्रण परियोजना भी चलाई जा रही हैं। लेकिन मात्र परियोजना से कुछ नहीं होता। जब तक जनमानस जागरूक, चेतन और प्रशिक्षित नहीं होगा तब तक सफलता प्राप्त करना मुशिकल होगा।

वन विनाश से हिमनद भी सुरक्षित नहीं हैं। हाल में किए गये एक अध्ययन के अनुसार हिमालयी हिमनद तेजी से समाप्त हो रहे हैं। कारण तापमान का बढ़ना। अगर यह प्रक्रिया जारी रही तो सन् 2035 तक हिमालयी हिमनद पूर्ण रूप से समाप्त हो जायेगे। हिमनद अनेकों नदियों का उदगम स्थल हैं। जो करोड़ों जीवन का आधार है। यह सिर्फ नदियों तक ही सीमित नही हैं समुद्र के जलस्तर में भी दिनों दिन वृद्धि हो रही हैं। अंटार्कटिका के बर्फ सतह में दरारें उभर आई है तो दूसरी तरफ आर्कटिक की चालीस प्रतिशत तक हिम पिछले पचास सालों में पिघल चुकी है। यह सिलसिला रहा तो यह दिन भी दूर नहीं जब समुद्र का जलस्तर तटीय शहरों को जलमग्न कर देगा।

राष्ट्र की संपन्नता और विकास में जंगल का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। विकास का पैमाना तय करते समय भविष्य की संभावनाओं पर भी अवश्य विचार करना जाहिए। क्योंकि हमारा एक अविवेकपूर्ण कदम अनेक दूष्परिणाम को जन्म देता हैं।

पर्यावरण के लेकर 1992 मे ब्राजील के रियों डि जेनेरों में प्रथम पृथ्वी सम्मेलन का आयोजन किया गया। इसमें 178 देशों ने वनस्पति, जैव विविधता, विश्व उष्णता को रोकने का संकल्प किया । संम पूर्ण विश्व वन और पर्यावरण हनन को लेकर चिंतित है क्योंकि उसके दुष्परिणामों से सभी अवगत हैं।

हमारे देश में पर्यावरण, वन्य जीवों और वनो की सुरक्षा के लिए भारत सरकार ने 85 राष्ट्रीय उद्यान, 12 बायोस्फेयर रिजर्व, एवं 448 अभयारण्य स्थापित किए हैं।

पर्यावरण असंतुलन ने प्रकृति को अपना तेवर बदलने पर मजबूर कर दिया है। प्रकृति के वदलते तेवर मे अपने घातक परिणाम दिखाने शुरु कर दिए हैं। बुद्धिमानी उसी में है कि हम सँभल जाएँ । इसके जिम्मेदार हम है तो सुधारक भी हमें होना होगा। हमारे देश की परंपरा सभी से स्नेह की रही हैं। अतः वन के प्रति भी यही खैया अपनाने की जरुरत हैं।

अपर सियांग जिले की वानस्पतिक विविधता

रितेश कुमार चौधरी,
भा० व० सर्वेक्षण, इटानगर

अरूणाचल प्रदेश, भारत की संपूर्ण जैव-विविधता का एक बड़ा भाग अपने आप में समाहित करनेवाला वह राज्य; जो न केवल अपनी जैव-विविधता भौगोलिक स्थिति, दुरूह भू-आकृति एवं जलवायु की दृष्टि से बल्कि अपनी अछूती सांस्कृतिक विरासत को सहेज कर रखने की दृष्टि से भी विशेष है। कभी नेफा, कभी दॉन्यी-पोलो का देश तो कभी उगते सूरज का देश; जैसी विविधता इस राज्य के नाम में है ठीक वैसी ही विविधता इस राज्य के गर्भ में पाई जानेवाली वनस्पतियों में भी है। सर्वेक्षण, गवेषणा, जैव-विविधता के सतत् उपयोग एवं संरक्षण के दृष्टिकोण से अनेक कठिनाइयों के बावजूद भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण की ओर से इस राज्य में कई सर्वेक्षण अभियान आयोजित किए गए ; परिणामस्वरूप 'मैटेरियल्स फॉर द फ्लोरा ऑफ अरूणाचल प्रदेश' एवं 'ऑर्किड्स ऑफ अरूणाचल प्रदेश' जैसी कृतियों का मुद्रण संभव हो पाया। परंतु अपनी दुर्गम भौगोलिक संरचना, विशेषकर यातायात की अनुपलब्धता के कारण रज्य के कुछ ऐसे क्षेत्र शेष हैं जहाँ की वनस्पतियों का सर्वेक्षण कार्य अभी तक संभव नही हो पाया है। ऐसे ही क्षेत्रों में एक प्रमुख नाम है-अपर सियांग जिला। हालाँकि, कुछ वनस्पतियों के द्वारा इस क्षेत्र में छिटपुट कार्य संपादित किए गए हैं यथा–आइ० एच० बर्किल (1924) , आर० एस० राव तथा जे० जोसेफ (1966), के० सी० तिवारी तथा वी० पी० तिवारी (1966) आर० एन० कौल तथा के० हरिदासन (1987) इत्यादि। परंतु ये कार्य इतने पर्याप्त नहीं हैं कि इस जिले के वनस्पतिजात (फ्लोरा) का मुद्रण संभव हो सके। अपनी कोशिशों कों लगातार विस्तार देते हुए हाल ही में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण ने 'फ्लोरा ऑफ इंडिया' प्रोजेक्ट के तहत मुझे अपर सियांग जिले की वनस्पतियों के सर्वेक्षण का दायित्व सौंपा। अपने इसी दुष्कर लक्ष्य को अंजाम देने हेतु मैंने अपर सियांग जिले का एक पन्द्रह दिवसीय सर्वेक्षण किया जिसके दौरान न सिर्फ वनस्पतियों के विशालतम एवं गुप्त खजाने में एक छोटी सी सेंध लगाकर 136 प्रकार के पौध-नमूने एकत्रित कर पाया। बल्कि खट्टे-मीठे अनुभवों का एक बड़ा पिटारा भी साथ लेकर आ पाने में सफल रहा।

अपर सियांग जिला, जो पहले पूर्वी सियांग

जिले का एक हिस्सा था १९९५ ई० में एक स्वतंत्र जिले के रूप अस्तित्व में आया तथा इसका मुख्यालय 'यिंगक्योंग' में बनाया गया। पूर्व में अपर एवं लोअर दिबांग घाटी से तथा पश्चिम एवं दक्षिण में क्रमशः पश्चिमी तथा पूर्वी सियांग जिले से घिरा हुआ हैं। 6871 वर्ग कि०मि० में विस्तृत यह जिला 28⁰.19–29⁰ 10 उत्तर अक्षांश एवं 94⁰ 35'–94⁰ 58' पूर्व देशांतर के मध्य अवस्थित हैं। इसका उत्तरी भाग चीन की सीमारेखा से जुड़ा होने के कारण वनस्पतियों की उपलब्धता के दृष्टिकोण से और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। चीन से निकलनेवाली सियांग नदी यहाँ की मुख्य नदी है परंतु इसके अलावा कई छोटी-बड़ी नदियाँ यथा–सियोम, थाप्ने आदि भी यहाँ के वासियों को तृप्त करने का कार्य करती हैं। मैंने अपनी यात्रा के दौरान जिन क्षेत्रों का दौरां किया उनमें थिंगक्योंग, रामसिंग, गेटे, मोइंग, गोसेंग तथा मारियांग प्रमुख हैं। यह सारे क्षेत्र विराट गगनचुम्बी पर्वतों एवं पातालनुमा घाटियों से भरे पड़े हैं। यहाँ की चोटियाँ समुद्रतल से 500 मी० से लेकर 2500 मी० तक ऊँची हैं। भारत सरकार द्वारा घोषित मौलिंग राष्ट्रीय उद्यान का एक बड़ा भाग भी इस जिले में समाविष्ट है। अयधिक वर्षा का क्षेत्र होने के कारण भू-स्खलन एवं भू-अपरदन की परिघटना एक सामान्य सी बात है। सूर्यदेव भी पूर्णतया यहाँ कम ही दृष्टिगोचर होते हैं फलस्वरूप वातावरणमें आर्द्रता का प्रतिशत भी उच्च है।

जलवायु तथा उँचाई में विविधता होने के कारण यहाँ की वनस्पतियों में भी अत्यंत विविधता पाई जाती हैं। यह क्षेत्र आर्किडो के लिए एक आदर्श वातावरण प्रदान करता हैं। यहाँ के वन विभाग के प्रमुख केंद्र थिंगक्योंग, जेगिंग तथा गेकू में उपोष्ण वन आसानी से देखे जा सकते हैं परंतु अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्र जैसे-मारियांग में शीतोष्ण तथा उत्तरी भाग में हिमाद्रि वन भी देखे जा सकते हैं।

पूर्व प्रकाशित लेखों एवं शोधपत्रों के आधार पर यहाँ की वनस्पतियों को तीन प्रमुख भागों में विभक्त किया जा सकता है। (चैंपियन एवं सेठ, 1968, कौल एवं हरिदासन 1987) :–

क. उपोष्ण कटिबन्धीय वन,

ख. शीतोष्ण वन, तथा

ग. उपहिमाद्रि या हिमाद्रि वन।

क. उपोष्ण कटिबन्धीय वन :

इस प्रकार के वनों को अपर सिवांग में यिंगक्योंग, रामसिंग, गेटे, मोइंग, सिमांग सभी जगहों पर देखा जा सकता है। इन वनों में पाए जाने वाले पेड़-पौधो में मूसा वेल्यूटिना दुआबंगा ग्रांडिफ्लोरा, आर्टोकार्पस हिटरोफाइला तथा फाइकस, साइट्रस, बोम्हैरिया, एब्रोमा तथा पांडानस आदि की प्रजातियाँ हैं।

अरूणाचल प्रदेश, जिसे 'आर्किडों का स्वर्ग' भी कहा जाता है; का अपर सियांग जिला भी आर्किडों से अछूता नहीं हैं। यहाँ के ऑर्किडों में गुडेरिया, डेन्ड्रोबियम, रैन्कोस्टाइलिस, वैन्डा, बल्बोफाइलम आदि प्रमुख हैं। इनके अलावा यहाँ बाँसों की विभिन्न

प्रजातियाँ जैसे–डेन्ड्रोकैलेमस हैमिल्टोनाई, डी० हूकेरी, डी० स्ट्रिक्टस, डी० जाइगैंटियस तथा आरोही प्रकृति का बाँस साइजोस्टैकिस शेषागिरियाना भी दर्शनीय है। चारों ओर फैले हुए विविध प्रकार के द्रुम जाति पर्णांग भी एक अलग ही छटा प्रस्तुत करते हैं।

ख. शीतोष्ण वन :

इस प्रकार के वन में मुख्यतः क्वेरकस, कैस्टानॉप्सिस, पॉपुलस, मैग्नोलिया, वैक्सीनियम तथा पॉलीगोनम आदि की प्रजातियाँ देखी जा सकती हैं। इनके अलावा रोडोडेन्ड्रॅन, अगापिटिस, आर्किड्स तथा द्रुम जाति पर्णांगों की प्रजातियाँ भी बहुतायत में देखी जा सकती हैं।

ग. उप हिमाद्रि एवं हिमाद्रि वन :

अपर सियांग के उत्तरी भाग में चीन की सीमा रेखा पर ये वन देखे जा सकते हैं। अत्यंत ऊँचाई वाले इन क्षेत्रों में अत्यधिक ठंड एवं हिमाच्छादन होने के कारण पौधों की अभिवृद्धि एक छोटे अंतराल तक ही सीमित होती हैं जिससे यहाँ सिर्फ झाड़ीनुमा पौधे एवं शाक ही अधिक दृष्टिगोचर होते हैं। इन पौधों में एबीज, गाउल्थेरिया, रोडोडेन्ड्रॉन, प्राइमुला आदि देखे जा सकते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अपर सियांग जिले के विशालतम वनस्पति-कोष में कितनी विविधता सन्निहित हैं। इसके सुव्यवस्थित सर्वेक्षण एवं गवेषणा से न जाने कितने ही वनस्पतियों के मानव कल्याणकारी गुणों के रहस्योद्‌घाटन की संभावनाएँ हैं जो न केवल हमारे लिए अपितु हमारी संततियों के लिए भी लाभकारी सिद्ध होंगी इसमें कोई संशय नहीं।

मानव के कटु वनस्पति मित्र

हिमांशु शेखर महापात्र
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इटानगर

एक प्राचीन लोकोक्ति के अनुसार "सच्चा मित्र वही है जो कड़वी बातें भी सीधे हमारे मुँह पर कहने से न चूके।" इसी प्रकार प्रकृति ने भी असंख्य पौधों को महत्वपूर्ण औषधीय गुणों से विभूषित किया है जिनमें कई पौधे स्वाद में तो अत्यंत ही कड़वे होते हैं परंतु उनकी औषधीय गुण मानव जाति के लिए अत्यंत ही कल्याणकारी हैं। कुछ ऐसे ही महत्वपूर्ण पौधों की चर्चा नीचे की जा रही हैं–

अज़ाडिरेक्टा इंडिका एल० (नीम)

यह मेलिएसी परिवार का एक विशाल उष्णकटिबंधीय वृक्ष है। इसकी कड़वी पत्तियाँ सब्जियों के सांथ खाई जाती है जो एक प्रकार के संक्रमण दोष नाशक का कार्य तो करती ही हैं साथ ही यकृत की कार्य प्रणाली को उत्तेजित कर भूख को बढ़ाने का कार्य भी करती हैं। इसकी पत्तियों का लेप जहाँ फोड़े–फुंसियों से मुक्ति दिलाता है वहीं इसका काढ़ा अल्सर एवं एक्जीमा जैसी बीमारियों से निजात दिलाता है। इसके कोमल तने का दातून के रूप में उपयोग तो सर्वविदित है ही, इसके छाल का उपयोग भी है जो स्तम्भक का कार्य करती है। इसके बीज के तेल का उपयोग चर्म-रोगों तथा संधिवात को दूर भगाने तथा साबुन एवं दंतमजन बनाने में किया जाता हैं। इसकी लकड़ियाँ भी खिलौने तथा मूर्तियाँ बनाने में उपयोगी हैं।

मोमोर्डिका करैंसिया एल० (करेला)

कुकरबिटेसी परिवार का यहा पौधा पतला, वार्पीय तथा आरोही प्रकृति का होता है। इसके फल अत्यंत पोषक एवं औषधीय गुणों से सुसज्जित होते हैं। इसकी पत्तियों का रस वमनकारी तथा विरेचक होता हैं साच ही तलवों की जलन में पीस कर लगाने से आराम पहुँचाता हैं। इसके फल तथा पत्तियाँ कृमिनाशक होने के साथ बवासीर, कुष्ठ रोग तथा पीलिया में लाभकारी होते हैं। इस पौधे के जड़ भी स्तम्भक का कार्य करते हैं तथा बवासीर में लाभकारी हैं इसके फलों के रस का सेवन मधुमेह के लिए लाभदायक हैं। इनमें कैरोटीन तथा सैपोनिन नामक अति सुगंधित तेल तथा मोमोर्डिसीन नामक अल्कलॉयड पाया जाता है।

राउल्फिया सर्पेंटाइना (एल०) बेन्थ० एक्स कुर्ज० (सर्पगन्धा)

यह एपोसाइनेसी परिवार का एक छोटी झाड़ीनुमा उष्णकटिबन्धीय पौधा हैं। इस पौधे की जड़ों से एक प्रकार की कड़वी औषधि तैयार की जाती है जो निद्राकारी होने के साथ-साथ जहरीले सरीसृपों तथा कीटों के डंक के विरूद्ध विषांतक का कार्य भी करता है। इसकी जड़ से तैयार काढ़ा गर्भाशय के संकुचन की अभिवृद्धि में सहायक होता हैं। उसकी पत्तियों का रस आँखों में डालने से कोणिका (कर्णिया) का धुँधलापन भी दूर होता हैं। इस पौधे से प्राप्त 'रिसरपाइन' आँत की तकलीफों से छुटकारा दिलाने के साथ ही अनिद्रा एवं नाड़ी-संस्थान की तकलीफों जैसे–उन्माद, उदासीनता आदि से भी निजात दिलाने में सहायक हैं। यह रक्त-चाप के मरीजों के लिए भी एक आदर्श औषधि के रूप में प्रयुक्त होता हैं।

स्ट्राइकनॉस नक्स-वॉमिका एल० (कुचिला)

यह लोगानिएसी परिवार का एक उष्णकटिबंधीय वृक्ष है।

इस पौधे के आविष एवं औषधीय गुण इसमें पाए जानेवाले दो अल्कलॉड ''सिट्राकिनन''तथा ''ब्रूसीन'' के कारण हैं। इसके बीजों से प्राप्त अल्कलॉयड 'स्ट्रिकिनन' का उचित मात्रा में प्रयोग केंद्रीय तंत्रिका तंत्र को उत्तेजित करने में सहायक है जिससे यह लकवे के रोग में आराम दिलाता है।

उपरोक्त सूचनाएँ उपलब्ध लेखों एवं शोधपत्रों पर आधारित हैं। इनका उपयोग प्रदर्शन की तरह न किया जाय, वस्तुतः इनपर अतिरिक्त शोधकार्य वांछनीय हैं।

झारखंड के कुछ औषधीय पौधे

आर० के० गुप्ता
भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा

झारखंड राज्य का कुल भौगोलिक क्षेत्र 79,714 वर्ग कि० मी० है जो 22°.00-24°.37 उत्तरी अक्षांश तथा 83.15-87.01 पूर्वी देशान्तर पर स्थित है। राज्य का वन क्षेत्र का प्रतिशत 29.61 है जिसमें 4387.20 वर्ग कि०मी० आरक्षित वन, 19184.78 वर्ग कि०मी० सुरक्षित वन तथा 33.49 वर्ग कि०मी० अवर्गीकृत वन हैं जिसका कुल क्षेत्रफल 23,605.47 वर्ग कि० मी० है। इस राज्य में 2 राष्ट्रीय उद्यान तथा 9 अभयारण्य हैं जिनका क्षेत्रफल 2100.58 वर्ग कि०मी० है।

जैसे-जैसे हम विकास की ओर कदम बढ़ाते जा रहे है औषधिय पौधों पर चिकित्सा जगत का विश्वास दृढ़ होता जा रहा है। औषधीय पौधों का उपयोग और महत्व आज सर्वविदित है।

भारत में स्वस्थ शरीर एवं रोग निवारण के लिए पौधों के उपयोग आदिकाल से होता आया है जिसका विवरण ऋग्वेद में मिलता है और इन पौधों का औषधियों के निर्माण में उपयोग का वर्णन 2000 वर्ष ईसा पूर्व अथर्ववेद की रचना के 1000 वर्ष पश्चात् तक औषधी वनस्पतियों के उपयोग के संबंध में अभिलेख नहीं मिलते है। लगभग 1000 वर्ष बाद चरक संहिता में 700 औषधियों एवं लगभग इतनी ही प्रजाति की वनस्पतियों के औषधि उपयोग का विवरण मिलता है।

भारतीय चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद में लगभग 2000 पदार्थ औषधियों में प्रयुक्त होते हैं जिसमें लगभग 200 पदार्थ जीवजन्तुओं से प्राप्त होते हैं और इतने ही खनिजों से प्राप्त होते हैं शेष लगभग 1500 पदार्थ वनस्पतियों से प्राप्त होते है। जैसे पौधों, वृक्षों लताओं इत्यादि के फूल फल, बीज, जड़, छाल, गोंद, रस इत्यादि।

झारखंड के वनों, कृषिक्षेत्रों नदी-नालों के किनारे एवं पहाड़ों में लगभग एक लाख प्रजाति की वनस्पतियाँ पायी जाती है जिसमें वृक्षों, क्षुपों तृणों लताओं एवं छोटे पौधों के विशाल संभार उपलब्ध है। इनमें से अनको ऐसी प्रजातियॉ है जिनके महत्वपूर्ण औषधीय उपयोग है। आवश्यकता है कि इनके महत्व को समझा जाए, इनका आकलन किया जाए और कृत्रिम संसाधनों की ओर भागते हुए मानव समुदाय पुनः वनस्पति जगत की ओर मोड़ने का प्रयास किया जाय।

झारखंड के वनों से इन मूल्यवान औषधियों वनस्पतियों का आज अंधाधुंध दोहन हो रहा है, इसे रोकना होगा।

झारखंड राज्य में पाई जानेवाली कुछ महत्वपूर्ण वनौषधियाँ नीचे दी गई तालिका 1 मे क्रमबद्ध–

क्रम संख्या	प्रचलित नाम	वानस्पतिक नाम	कुल	उपयोगी भाग
1.	मालकांगनी	सेलैस्ट्रस पेनीकुलैटस	सेलैस्ट्रेसी	बीज
2.	कैमोमिला	मेट्रीकैरिया कैमोमिला	एस्टेरैसी	फूल
3.	मुलैठी	ग्लाइसीराइजा ग्लैब्रा	फैबेसी	जड़ और भूमिगत तना
4.	जापानी पुदीना	मैन्था आर्वेसिस	लैमिएसी	पत्ती
5.	पिप्पली	पाइपर लौंगम	पाइपेरेसी	तना, जड़, फल
6.	गिलोय	टिनोस्पोरा कौर्डीफोलिया	मेनिस्पर्मेसी	जड़ तना फल और पत्ती
7.	बायविडंग	एम्बेलिया राइबस	मीरसिनैसी	फल, बीज, पत्ती, जड़
8.	गुड़मार	जिम्नेमा सिल्वेस्टर	एस्कलेपियडेसी	पत्ती जड़
9.	घृतकुमारी	अलोएवेरा	लिलियेसी	पत्ती और छाल
10.	जोजोबा	सिम्मोण्डेसिया चाइनेंसिस	सिम्मौण्डैसी	बीज
11.	क्रौंच	म्यूकाना प्रूरियेंस	फैबेसी	जड़ बीज और पत्ती
12.	पामारोजा घास	सिम्वोपोगन मारटिनी	पोएसी	बीज और पत्ती
13.	सिट्रोनेला	सिम्बोपोगन विन्टेरियेनस	पोएसी	पत्ती
14.	मीठी तुलसी	ओसीमम वैसीलिका	लैमिएसी	पत्ती और बीज
15.	नींबू घास	सिम्बोपोगन फ्लैक्सुऔसस	पोएसी	फल और पत्ती
16.	कलिहारी	ग्लोरिओसा सुपर्वा	लिलिएसी	बीज
17.	सर्पगंधा	राउवोल्फिया	एपोसायनेसी	जड़
18.	भृंगराज	एक्लिप्टा अल्वा	एस्टरेसी	पत्ती और बीज
19.	काली मुसली	करकुलिगो आरकीवायडिस	लिलिएसी	कन्द
20.	बच	अकोरस कैलेमस	एरेसी	राइजोम
21.	सतावर	एस्पैरेगस रेसीमोसस	लिलिएसी	जड़
22.	मुश्कदाना	एबेलमोस्कट मोस्कैटस	माल्वेसी	बीज
23.	अश्वगंधा	विदानियाँ सोमीफेरा	सोलेनेसी	जड़ और पत्ती
24.	कालमेघ	एण्ड्रोगाफिस पैनीकुलाटा	एकेन्थेसी	तना, पत्ती फल, फूल और बीज
25.	सफेद मुसली	क्लोरोकाइटम बोटीविलएनम	लिलिएसी	कन्द

झारखंड के लोग औषधीय पौधों को अपनी चिकित्सा के साथ साथ आजीविका का साधन भी बना सकते है किन्तु यह तभी संभव है जब हम उन्हें वनस्पतियों की पहचान, व्यवहारिक तौर पर करायें तथा उसके औषधीय गुणों के साथ-साथ व्यावसायिक उपयोगो एवं बाजार मूल्यों से भी परिचित कराये।

वँनस्पति भण्डार की इस मूल्यवान धरोहर को सुरक्षित रखना होगा जो न केवल प्राणीमात्र के लिए जीवनदायी है बल्कि जीविकोपार्जन के आधार भी हैं।

चेतना

रितेश कुमार चौधरी
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इटानगर

है हर्षित क्यूँ तू मानव?
कर दमन निज पर्यावरण का,
कर हरण भूआवरण का,
विस्मरण निज आचरण का,
वरण भौतिक साधनों का,
संग्रहण बस आयुधों का ।

मूढ़ मत बन, चेत जा
औ सुन प्रकृति की वेदना ।
कर आचरण तू मनुज सम,
उत्पन्न कर संवेदना ।
कर मृगण-मार्गण संपदा का
और दे अभिप्रेरणा।
कर संचरण नव पीढ़ियों में
पर्यावरण की चेतना ।

थुनेर (हिमालयन-यू)–मृत्यु का वृक्ष?

हरीश सिंह 'भुजवान'
केन्द्रीय वनस्पति प्रयोगशाला, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
हावड़ा

पौराणिक ग्रन्थो के अनुसार समुद्र मन्थन द्वारा जिन चौदह रत्नों की उत्पत्ति हुई उनमें विष (जहर) तथा अमृत (औषधि) प्रमुख थे। एक ही वृक्ष में इस प्रकार का विषैला गुण व अमृत रूपी औषधीय गुण विद्यमान होना एक सुखद आश्चर्य एवं संयोग मात्र ही प्रतीत होता हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण टेक्सेसी कुल का एक वृक्ष जिसे अंग्रेजी में हिमालयन-यू, संस्कृत में मन्डूपर्णी, तालिशपत्र तथा हिन्दी में थुनेर व विर्मी के नाम से जाना जाता है। अधिकांश वानस्पतिज्ञों द्वारा इसकी वानस्पतिक पहचान Taxus baccata के नाम से की गयी हैं किन्तु वर्तमान शोध साहित्य के आधार पर हिमालय क्षेत्र में नैसर्गिक रूप से उगने वाले इस वृक्ष का सही वानस्पतिक नाम Taxus wallichiana Zucc हैं। यह जाति प्राय उत्तर व पूर्व हिमालय क्षेत्र, दक्षिण तिब्बत से लेकर पश्चिम चीन तथा फिलीपीन्स तक पायी जाती है।

भारत वर्ष के शीतोष्ण हिमालय क्षेत्र में 1800 से 3,300 मीटर की ऊँचाई वाले स्थानों में प्राकृतिक रूप से पाया जाने वाला यह सदा बहार पेड़ 6 से 10 फीट तक ऊँचा होता हैं। इस पेड़ की छाल पतली व लाल-कत्थई रंग की होती हैं। थुनेर की पत्तिया लम्बी, सूच्चाकार, ऊपरी सतह चमकीली तथा निचली सतह हल्की पीली-कत्थई रंग की होती हैं। इसके वृक्ष प्रायः एक लिंगी, जिनसे नर स्ट्रोविलाई गोल तथा मादा स्ट्रोविलाई एक कप नुमा आवरण में लाल रंग के होते है। पश्चिम हिमालय क्षेत्र में थुनेर प्रायः छायादार नम स्थलों में बांझ, खरसू, देवदार, रागा व सवा के मिश्रित जंगलो में पाया जाता हैं।

ग्रीक व लेटिन साहित्य के अनुसार Taxus का शाब्दिक अर्थ poison है। इसके विषैले गुण के कारण इसे 'ट्री आफ डेथ' (Tree of death) भी कहा जाता है। उल्लेखनीय है कि इस वृक्ष की लकड़ी से बने पीपे में रखी शराब पीने से कई लोगों की मृत्यू हो गयी थी। डायोस्कोराइड्स के अनुसार इस प्रजाति के वृक्ष से लगातार जहर निकलने के कारण इनके नीचे सोने व खाने से भी मृत्यु हो सकती हैं। इसके नर पौधे से मार्च-अप्रैल में बहुतायत में निकलने वाले पीले रंग के परागकण भी इसका एक कारण हो सकता है।

गौल जाति के लोगों द्वारा इसके फलों के रस को जहर के रूप में तीर के मुख पर लगाकर शिकार करने का वर्णन भी साहित्य में मिलता हैं। सम्भवतः प्राचीन काल से इस वृक्ष से शिकार के सयन्त्र व जहर बनाने में प्रयुक्त होने के कारण इसे मृत्यु से जोड़ा जाता रहा है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इस वृक्ष में पाये जाने वाले ग्यारह एल्केलायड के मिश्रण (टोक्सिन) ही जहर का कारण हो सकते है। एक अध्ययन के अनुसार मोनोगेस्ट्रीक जन्तुओं के लिए इसकी जहर क्षमता 0.5 ग्राम/किं ग्राम तथा चौपाया जानवरों के लिए 5 ग्राम/कि.ग्रांम तक होती है। मनुष्य के बारे में कोई प्रमाणिक आंकड़े तो उपलब्ध नहीं है किन्तु 4 से 5 मुठ्ठी (150) पत्तियां जहरीली हो सकती है। आश्चर्य की बात है कि अभी तक इसके जहर के लिए कोई विष-प्रतिरोधक ज्ञात नंही है।

दूसरी तरफ इस वृक्ष के उपयोगी गुणो पर दृष्टि डालने से इसका जहरीला पक्ष कमजोर प्रतीत होता है। अमेरिका में सन् 1964 से 1971 तक किये गये शोध के आधार पर इस वृक्ष के ही एक जाति (टेक्सस ब्रेवीफोलिया) की छाल से 'टेक्सोल' नामक सक्रिय तत्व की खोज की गयी, जिससे स्तन व गर्भाशय के केन्सर की बहुमूल्य औषधि बनती हैं। इस वृक्ष से मलेरिया, गठिया-वात की दवा भी बनती है। इसे हृदय टानिक के रूप में भी प्रयुक्त करते हैं। विषैले सॉप के काटने की औषधि भी इस वृक्ष से बनती हैं। थुंनेर की पत्तियों से मृगी हिस्ठीरिया, मनोरोग, पत्थरी, ऐंठन आदि रोगों की औषधि बनाई जाती है। इसकी पत्तियों के क्वाथ को पिलाने से अनंचाहा गर्भ गिर जाता है। इसके नये तनों के अर्क से सिरदर्द, चक्कर, दुर्वलता, नाड़ी-रोग, सर्दी, श्वास, अतिसार व आँव का उपचार भी किया जाता हैं। थुनेर के लाल फलों को बलगम निकालने वात-विकार व पेट दर्द के उपचार मे दिया जाता है। यूनानी पद्धति की एक प्रसिद्ध औषधि 'जारनाब'भी इस वृक्ष की पत्तियों से तैयार की जाती है। पर्वतीय क्षेत्रों में स्थानीय मान्यताओं के अनुसार पूर्णमासी के दिन इस वृक्ष की छाल में सभी औषधीय गुण विद्यमान होने के कारण इसी दिन इसकी छाल एकत्र की जाती है।

थुनेर के छाल को कूटकर आज भी उच्च हिमालय क्षेत्र के निवासियों द्वारा चाय-पत्ती के रूप में प्रयुक्त किया जाता है जिससे शरीर को ताजगी, स्फूर्ति और शक्ति मिलती है। इसके पके लाल रंग के फलों को भी खाया जाता हैं।

इस वृक्ष की लकड़ी मजबूत, सुन्दर, कीट-रोधक व टिकाऊ होने के वजह से इसकी मांग बहुत है। इसकी मजवूती के बारे में कहा जाता है कि 'जितना खड़ा उतना पड़ा' अर्थात् जितने लम्बे समय तक यह वृक्ष खड़ा रखता है उतने ही वर्ष तक इसकी लकड़ी खराब नहीं होती है। इसकी लकड़ी से दरवाजों के चौखट, छत, फर्श, वीम, तख्ते, खम्भे, चार-दिवारी, पानी की चक्की का दाँता, हल के विभिन्न भाग,

मठठ्ा बनाने का बर्तन, विभिन्न प्रकार के फर्निचर, बन्दूक, राईफल व चाकु के हत्थे, कंघी, मोम बत्ती का स्टेण्ड व अन्य सजावटी सामाग्री आदि बनाये जाते हैं। इसके प्राकृतिक रूप से टेढे-मेढे तनो की लकड़ी को विभिन्न आकृतियों में ढालकर सजाने हेतु कई पर्यटक स्थलों में बेचा जाता हैं। इसकी लकड़ी से तैयार पाउडर को धूप की तरह भी जलाया जाता है। इसकी सूखी लकड़ी को ईधन के रूप में भी प्रयोग करते हैं। थुनेर के फलों के रस से सौन्दर्य प्रसाधन सामाग्री जैसे बालों की क्रीम, दाड़ी की क्रीम, कोल्ड क्रीम, बर्तन धोने का पाउडर व दाँतो का पाउडर आदि भी बनाये जाते हैं।

अनुभव के आधार पर यह पाया गया है कि इस पौधे के नीचे खाने व सोने मात्र से मृत्यु हो जाने की बात सत्य नही हैं। मनुष्य व पशु-पक्षियो द्वारा इसके लाल फलों को खाते समय बीजों के निगल जाने से भी कोई नुकसान नहीं होता हैं। इसकी पत्तियां शीत काल में बकरियों को खिलाने से भी कोई दुष्प्रभाव नहीं देखा गया हैं। इस प्रकार इस पेड़ से जुड़ी भ्रान्तियों व अवगुणों और गुणों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर हम निःसंकोच कह सकते हैं कि यह वृक्ष हमारे लिए 'मृत्यु का वृक्ष' नहीं बल्कि 'जीवन का वृक्ष' अधिक प्रतीत होता है। किन्तु पर्वतीय क्षेत्रों में इस वृक्ष के पत्तियों व छाल से कैन्सर की औषधि बनने की जानकारी के उपरान्त विभिन्न दवा निर्माताओं व क्षेत्रीय लोगों द्वारा दुर्भाग्य से इसका अन्धाधुन्ध दोहन किया जा रहा है। जिससे यह वृक्ष संकटग्रस्त पौधों की सूची मे आ गया हैं। इस वृक्ष की छाल पतली होने के कारण वनाग्नि से भी इनकी संख्या पर दुष्प्रभाव पड़ रहा है। इसके बीजों का आवरण कढ़ा होने व सुसुप्त अवस्था अधिक (लगभग २ वर्ष) होने तथा प्राकृतिक रूप से जमाव क्षमता कम (मात्र 8 प्रतिशत) होने के कारण इनका प्रसारण बहुत कम देखा गया हैं। इसके पौधों की वृद्धि भी बहुत धीरे धीरे होती है। लेखक द्वारा विगत वर्षों में किये गये प्रयोग के परिणाम के आधार पर इसके तनों के कटिंग को विभिन्न ग्रोथ रेगुलेटर द्वारा उपचारित कर लगाने से इनके प्रसारण में 50 से 80 प्रतिशत तक की वृद्धि की जा सकती है। अतः इस अमूल्य प्रजाति के वृक्षों के संरक्षण, संवर्धन व प्रसारण हेतु विभिन्न सरकारी व गैर सरकारी संस्थाओं को नई योजनायें तैयार कर इस अमृत रूपी धरोहर को बचाये रखने का अथक प्रयास करना चाहिए।

ये मीठे फल और सुगन्धित फूल

भोलानाथ
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पोर्ट ब्लेयर

यों पर्यावरण के प्रति मानव, क्यों करता है प्रतिबन्धित भूल।
जब कि प्रकृति प्रदान करे, ये मीठे फल और सुगन्धित फूल।।
जब सम्पूर्ण सृष्टि की संरचना, होती है प्रकृति के घटकों से।
क्यों इन्हें प्रभावित करता जग, नित नई प्रगति के झटकों से।।
जगवालों की हर गतिविधियाँ, यों होती रही सदा प्रतिकूल।
जब कि प्रकृति प्रदान करे, ये मीठे फल और सुगन्धित फूल।।

ऊर्जा-इंधन-पोषज पूरक, सब स्रोत प्रकृति देती ही रही।
जैव-अजैव सभी घटकों की, क्षति-पूर्ति सदा करती ही रही।।
हर कार्य हुआ विपरीत प्रकृति के,फिर कैसे बनी रही अनुकूल।
जब कि प्रकृति प्रदान करे, ये मीठे फल और सुगन्धित फूल।।

अधिक दिनों तक नहीं चलेंगे, यों धरती पर ऊर्जा के स्रोत।
तब रुक जायेगी प्रणाली ठहरेगी नहीं जीवन की ज्योति।।
यों वन-उद्यान-वाटिकाओं में, उड़ने लगी अभी से धूल।
जब कि प्रकृति प्रदान करे, ये मीठे फल और सुगन्धित फूल।।

जल-वर्षा-बादल-वायु-वनस्पति, हेतु प्रदूषण बाधक हैं।
धातु-अधातु और खनिज सम्पदा, विज्ञान प्रगति के साधक हैं।।
फिर उनका संरक्षण कैसे हो, जो विलुप्त धरा से हुए समूल।
जब कि प्रकृति प्रदान करे, ये मीठे फल और सुगन्धित फूल।।

सागर-तालाब-नदी-नालों के, यदि जल की पूर्ण सुरक्षा हो।
और पर्यावरण के हर पहलू की, नैतिकता पूर्ण समीक्षा हो।।
जन सहयोग ही समाधान है, बाकी सब तकनीक फिजूल।
जब कि प्रकृति प्रदान करे, ये मीठे फल और सुगन्धित फूल।।

इन प्रकृति की सुन्दर रचनाओं को मुक्त करें अभिशापों से।
यों भूतल का बदला पारितन्त्र, अनियंत्रित क्रिया-कलापों से।।
प्रधान बना जैविक मण्डल में, खुद तोड़ रहा प्राकृतिक ऊसूल।
जब कि प्रकृति प्रदान करे, ये मीठे फल और सुगन्धित फूल।।

गैस्टीरोमाइसीटीज - विचित्र आकृति वाले कवकों का समूह

दीपिका बिष्ट,
जयराम शर्मा एवं कनाद दास
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

आमतौर पर ''कवक'' शब्द सुनते ही प्रायः जनमानस के मन में सड़ी-गली लकड़ियों व नम स्थानों पर उगने वाले छतरीनुमा कवकों की एक छवि उभरती है परन्तु वास्तविकता कहीं आगे हैं। कवक कई आकृतियों एवं रंगों के हो सकते हैं जो देखने में बहुत ही आकर्षक तथा रोचक होते हैं। गैस्टीरोमाइसीटीज उपवर्ग इसी प्रकार के कवको का एक समूह है जो ''बेसिडियोमाइकोटिना''वर्ग के अन्तर्गत आता है। चूंकि इस उपवर्ग में मुख्यतया उदराकृति वाले कवको की जातियाँ पायी जाती हैं। अतः इसे 'स्टमक फंजाई' के नाम से भी जाना जाता है। सम्पूर्ण विश्व से इस उपवर्ग के लगभग 100 से अधिक वंश तथा 585 जातियाँ ज्ञात हैं जबकि भारतवर्ष से अब तक इसके लगभग 39 वंश तथा 150 जातियाँ देश के विभिन्न हिस्सों से खोजी गयी हैं। इस उपवर्ग के कवक सामान्यतः उष्ण तथा सम शीतोष्ण बागों में उगते हैं परन्तु हिमालयी क्षेत्र में ये असाधारण उँचाई (5400 मी.) से भी एकत्रित किये गए हैं। यद्यपि इस उपवर्ग की जातियाँ मुख्यतः मृतोपजीवी होती हैं जो कि सड़ी-गली लकड़ियों, पत्तियों, घास के खुले मैदानों, मिट्टी अथवा गोबर पर उगती पायी जाती है लेकिन कुछ जातियाँ पानी में भी मिलती हैं जो बहुत ही विरल हैं जैसे *लिम्नोपरडॉन इनकार्नेटम* तथा *निया विब्रिसा*। कुछ जातियां जैसे *गैस्ट्रोस्पेरियम सिम्पलेक्स, फेलस हेडरियानी* तथा फेलस रूबिकुण्डस को घासों तथा अन्य शाकीय पौधों पर मूल परजीवी माना जाता है। माप में भी इस उपवर्ग के कवककाय अत्यधिक विविधता प्रस्तुत करते हैं। ये सूई की नोंक जैसे *माइकोकेलिया* की जातियों से लेकर फुटबॉल के आकार से भी बड़े हो सकते हैं जैसे *कॉल्वेशिया जाइजेन्टिया* जिसका व्यास 30 से 45 सेमी. तथा परिधि 128 सेमी. तक हो सकती है। इस उपवर्ग की जातियों की विशेष आकृति के कारण ही इन्हें निम्नलिखित नामों से सम्बोधित किया जाता है।

1. पफ बॉल, 2. अर्थ स्टार, 3. बर्ड्स नेस्ट व 4. स्टिंक हार्न्स।

1. पफ बॉल (Puff Ball) : *लाइकोपरडॉन, कॉल्वेशिया, स्कलीरोडर्मा, बोविस्टा* आदि वंशों की जातियाँ अपनी गेंद समान आकृति तथा विशेष बीजाणु

विसरण के तरीके के कारण इस नाम से जानी जाती हैं। जब इनकी गेंदनुमा आकृति से बारिश की बूँद, जानवर अथवा कोई अन्य वस्तु टकराती है तो इसके अन्दर भरे हुए बीजाणु पाउडर के रूप में एक अथवा कई छिद्रों से बाहर जो इनकी अंतः पोरिडियम पर होते है, निकलते हैं। कवककाय के अन्दर का भाग जिसमें बीजाणु उत्पन्न होते हैं, ग्लेबा (gleba) कहलाता है। विकसित होने पर यही ग्लेबा पाउडर के रूप में बदल जाता है तथा इनमें सिर्फ बीजाणु तथा महीन धागेनुमा संरचना वाले कैपिलीशियम शेष रहते हैं जो बीजाणु विसरण में सहायक होते हैं। अविकसित अवस्था में इनकी लगभग सभी जातियाँ खाद्य होती हैं।

2. **अर्थ स्टार (Earth Star)** : यदि हमे आकाश में चमकते हुए सितारे के समान आकृति जमीन पर देखने को मिल जाए तो समझिए यही *जिएस्ट्रम* अथवा *माइरिओस्टोमा की* कोई जाति है जिन्हें हम 'अर्थ स्टार' या 'जमीन का सितारा' के नाम से जानते हैं। इनकी यह आकृति इनकी बाह्य पेरिडियम के कारण होती है जो कि विकसित होने के पश्चात् ऊपर से नीचे की ओर फटती है तथा बाहर की और मुड़ी हुयी रहती है। देखने पर यह तारे की भुजाओं के समान प्रतीत होती है, इनका अन्तः पेरिडियम गोल होता है तथा बन्द ही रहता है जिसमें एक (*जिएस्ट्रम*) अथवा कई (*माइरिओस्टोमा*) छिद्र हो सकते हैं। इन छिद्रों से होकर बीजाणु बाहर निकलते हैं। इनमें भी ग्लेबा पाउडर के रूप में होता है जिसमें बीजाणु और कैपिलीशियम पाए जाते हैं।

3. **बर्ड्स नेस्ट (Bird's nest)** : गैस्टीरोमाइसीट्स उपवर्ग के कुछ कवक जैसे *सायथस, निदुलेरिया, क्रूसीबुलम* आदि की जातियाँ देखने में चिड़िया के घोंसले के समान होती है जो कि सड़ी-गली लकड़ियों अथवा गोबर पर बहुतायत में पायी जाती हैं। इन वंशों की कवककाय घोंसलेनुमा अथवा कीपनुमा होती है जो माप में सिर्फ 5 से 15 मिमी. ऊँची तथा ऊपरी सिरे पर 10 मिमी. तक चौड़ी हो सकती है। इसके अन्दर छोटे-छोटे मसूर के दानों के समान लगभग 10-12 अण्डेनुमा आकृतियाँ जिनका व्यास 2-3 मिमी. तक होता है, भली प्रकार व्यवस्थित रहती हैं। इन अन्डेनुमा आकृतियों को पेरिडिओल्स कहा जाता है। ये पेरिडिओल्स ग्लेबा का ही एक रूप है जिसके अन्दर बीजाणु भरे हुए रहते हैं। पेरिडिओल्स एक छोटी धागेनुमा संरचना (फ्यूनिकुलस) के सहारे अन्तः पेरिडियम से जुड़े रहते हैं।

इन जातियों के बीजाणु के विशेष तरीके के कारण इनके वर्गीकाय को स्पलैश कप (Splash-cup) के नाम से भी जाना जाता है। तेज वर्षा के दौरान बारिश की बूँदें जिनका व्यास लगभग 4 मिमी. हो, जब 8 मी./से. की गति के साथ पेरिडिओल्स से टकराती हैं तो इन्हें ऊपरी दिशा में धकेल देती हैं। फ्यूनिकुलस का निचला चिपचिपा सिरा इन्हें उड़ने में मदद करता है तथा आसपास की किसी भी वस्तु जैसे घास, टहनी अथवा किसी जानवर के बालों के साथ चिपक जाता है। किसी अन्य बाह्य माध्यम के इनसे टकराने पर इनमें से बीजाणु निकल कर पुनः अंकुरित

होते हैं। गोबर पर उगने वाली जातियों में पेरिडिओल्स चारे के साथ जानवरों द्वारा खा लिए जाते हैं। इस विशेष परिस्थिति में इनमें पुनः बीजाणु अंकुरण इन जानवरों की भोजन प्रणाली से गुजरने की क्रिया के बाद होता है।

4. **स्टिंक हार्न्स (Stink horns)** : *फेलस, म्यूटिनस, डिक्ट्योफोरा* आदि वंशों की जातियाँ अपने विशेष सींगनुमा आकार तथा इससे निकलने वाली असहनीय दुर्गन्ध के कारण स्टिंक हार्न्स के नाम से जानी जाती हैं। इनका वर्गीकाय लगभग 5 सेमी. व्यास की अण्डेनुमा आकृति से विकसित होता है जिसमें इनका बीजाणोत्पादक भाग ग्लेबा रहता हैं। विकसित होने पर एक सींगनुमा आकृति जिसे स्टाइप (stipe) कहा जाता हैं, इससे बाहर निकलती है। इसके ऊपरी सिरे पर ग्लेबा चिपचिपे पदार्थ के रूप में रहता है जो आकर्षक रंगो का तथा जेलीनुमा होता है। अण्डेनुमा आकृति या वोल्वा से बाहर निकलते समय वह असहनीय दुर्गन्ध उत्पन्न करता है। दुर्गन्ध तथा आकर्षक रंगों से भरपुर यह जेलीनुमा ग्लेबा मक्खियों तथा अन्य कीटों के लिए उत्तम भोज्य पदार्थ होता है तथा कीटों को अपनी ओर आकर्षित करता है। इस तरह यह कीट इनसे अपना भोजन प्राप्त करने के साथ-साथ इनके बीजाणु विसरण में भी सहायता करते हैं।

आर्थिक रूप से भी गैस्टीरोमाइसीटीज उपवर्ग की जातियाँ बहुत महत्वपूर्ण हैं तथा प्राचीन काल से ही इनका उपयोग खाद्य रूप में, दवाइयों, प्रतिजैविक पदार्थ बनाने तथा अन्य कार्यो हेतु किया जा रहा है। अविकसित अवस्था में तो इस उपवर्ग की लगभग सभी प्रजातियाँ खाद्य होती हैं। इसके अतिरिक्त *कॉल्वशिया, बोविस्टैला, पाइसोलिथस* तथा *स्क्लीरोडर्मा* की जातियों से कैंसर रोधी तत्व "कॉल्वेसिन" प्राप्त किया जाता है जबकि *सायथस* की जातियों से एक अन्य दवा "सायथिन" प्राप्त की जाती है जिसमे कवक रोधी तथा जीवाणु रोधी गुण पाये जाते हैं। मध्य प्रदेश की कुछ जनजातियाँ तो बर्ड्स नेस्ट कवक *सायथस* का प्रयोग दुःखती आँखों के उपचार के लिए करती हैं। चीन में *डिक्ट्योफोरा* का उपयोग "आमतिसार" तथा "एथलीट्स फुट" रोग की रोकथाम के लिए तथा *लाइसुरस* की जातियों का उपयोग अल्सर की चिकित्सा में किया जाता है। इन जातियों में कैंसर रोधी तत्वों की उपस्थिति भी पायी गयी है। नाइजीरिया में *फेलस (स्टंक हार्न्स कवक)* की जातियों का उपयोग चिकित्सकों द्वारा कुछ रोग के उपचार में प्रयोग होने वाली दवा को बनाने में किया जाता है। *पाइसोलिथस आर्हिजस* में पीले तथा बैंगनी रंजकों की उपस्थिति के कारण इनका उपयोग सूती, ऊनी तथा रेशमी वस्त्रों को रंगने में किया जाता है। गैस्टीरोमाइसीट्स कवक जैसे *स्कलीरोडर्मा, पाइसोलिथस, राइजोपोगॉन* आदि की जातियाँ बड़े पौधों की जड़ों के साथ सहजीवी सम्बन्ध स्थापित करती है जिसे हम माइकोराइजा के नाम से जानते हैं। इस रूप में इस उपवर्ग के कवक भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने के साथ-साथ घने जंगलों के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

पर्यावरण संरक्षण में मानव का कर्तव्य

नन्दलाल तिवारी
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

पर्यावरण संरक्षण इस धरती पर जीवन को बनाये रखने के लिये अति अनिवार्य है। जिस तरह प्रकृति ईश्वर की श्रेष्ठतम देन है उसी प्रकार मानव ईश्वर की श्रेष्ठतम कृति है। हमारे चारों ओर जो भी प्राकृतिक और मानव निर्मित वस्तुयें हैं ये सब मिलकर ही पर्यावरण का निर्माण करती है। जिस तरह मिट्टी में पेड़ पौधे उगते है और बढ़ते है, जिस हवा में साँस लेकर सारे जीवधारी जिंदा रहते है तथा जो पानी हम सब पीते है ये सभी पर्यावरण के महत्वपूर्ण अंग है। ये सभी मिलकर पर्यावरण संतुलन बनाये रखती है और जीवन की क्रियाओं को चलाने में मदद करते हैं। परन्तु यह कैसी विडम्वना है कि मानव ही प्रकृति को नष्ट करता जा रहा है। इसका मुख्य कारण है सिर्फ अपने स्वार्थ के लिये आज मानव उन हरे-भरे वृक्षो को काट कर बड़ी - बड़ी इमारत वनाने में लगा हैं परन्तु यह नहीं सोचता कि जो वृक्ष हमें जीने के लिए आक्सीजन खाने के लिये फल और आराम करने के लिये छाया देते है उन्हें क्यों काट रहा है। अगर ऐसा ही चलता रहा तो वह वक्त दूर नहीं जब हमें पर्याप्त आक्सीजन नहीं मिलेगा एवं आक्सीजन मास्क लेना पड़ेगा। आज संरक्षण करना बहुत ही जरूरी है और इसे बचाना हमारा कर्तव्य है। पर्यावरण संररक्षण के लिये हमारी सरकार भी बहुत सी योजनायों तथा कार्यकम ले चुकी है। अगर हम सब मिलकर इन योजनाएं तथा कार्यक्रमों में सक्रिय भूमिका निभायें तब ही हमारी सरकार द्वारा बनाई गयी योजनायें तथा कार्यक्रम सफल हो सकेंगे। इसके साथ ही पर्यावरण संरक्षण सम्वन्धी जानकारी गाँव, शहर एवं विकास खण्ड स्तर पर दी जाय तथा उसके लाभ समझाये जाये तो हमारा कार्यक्रम पूरा हो सकता है जैसे कि हमारा भारतीय वनस्पति उद्यान हर वर्ष विश्व परिवेश दिवस मना कर स्कूलों के बच्चों, अविभावकों तथा शिक्षकों को परिवेश बचाने तथा अधिक से अधिक वृक्ष लगाने के लिये प्रेरित तथा जनचेतना जागृत करता है। तथा उस दिन छात्रों द्वारा उद्यान के खाली स्थानों में वृक्षारोपण किया जाता है। ठीक इसी तरह के कार्यक्रम गाँवो और शहरों में भी रखे जाने चाहिये और जनता को सामूहिक रूप से इस कार्यक्रम में भाग लेने के लिये प्रेरित किया जाय।

इसके साथ ही आज पर्यावरण प्रदूषण पर भी ध्यान देना होगा जो कि आज विश्व के सामने एक बड़ी चुनौती बन कर खड़ा है। विश्व की बढ़ती हुयी जनसंख्या, विषैला धुआँ उगलते हुये कल कारखानें व वाहन जंगलों का भारी विनाश, कारखानों से निकले विषैले रसायनिक पदार्थ एवं अन्य गंदी वस्तुयें आज वायु और जल को प्रदूषित कर चुकी है। अगर पर्यावरण को इसी तरह से दूषित करते रहें तो वह दिन दूर नहीं होगा कि इस खूवसूरत पृथ्वी पर रहने वाले हर जीव-जन्तु का जीवन संकटग्रस्त होगा। पर्यावरण को दूषित होने से बचाने के लिये अधिक से अधिक वृक्ष लगाकर इसका संरक्षण किया जा सकता है। ठीक उसी प्रकार प्रदूषण फैलाने वाले हर कारकों की सही जानकारी के माध्यम से वायुमंडल प्रदूषण से बचा जा सकता है। इन पर्यावरण प्रदूषण के कारको के विषय में हम बेखबर है। आज स्थिति यह हैं कि देश में कोई ऐसी झील, नदी नहीं है जिसका कि जल स्वच्छ रह गया हो। जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण के साथ-साथ ध्वनि प्रदूषण पर भी ध्यान देना होगा, जिसके कारण हजारो मानवों में बहिरापन, रक्तचाप से ग्रसित हैं जिसके रोकथाम के लिये हर संभव प्रयास करने होगे। पर्यावरण को स्वच्छ बनाये रखने तथा इसे प्रदूषित होने से रोकने के लिये नीचे लिखित मुख्य बातों पर ध्यान देना होगा–

1. वायु प्रदूषण को रोकने के लिये अधिक से अधिक वृक्ष लगाना।
2. नदी, तालाब एवं झरनों को प्रदूषित होने से बचाना ।
3. वन्य जीवों को सुरक्षित करना।
4. घनी बस्तियों और इलाकों में हरियाली बढ़ाना।
5. हर मनुष्य का कर्तव्य होगा कि एक वृक्ष अवश्य लगायें।
6. अपने आस-पास साफ सुथरा रखना तथा गंदगी इधर-उधर न फैलाये।
7. हर परिवार को अपनी जरूरत के लिये खांली बंजर जमीन खेत की मेड़ों पर वृक्ष लगाकर इसका उपयोग करना।
8. कारखानों को बस्तियों से दूर करना।
9. गावों में रोजगार की व्यवस्था कर शहरो पर बोझ को कम करना।

यदि उपरोक्त बातों पर ध्यान दिया जाय तो हम अपने पर्यावरण का संरक्षण और पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचा सकते है।

यह तुलसी मेरे आंगन की

अशोक बसु
मुख्यालय, भा० व० स० , कोलकाता

सीताजी का पता लगाने हनुमानजी लंका पहुँचते है। वहाँ का दृश्य विचित्र है। वे ऐसा कुछ नहीं देख रहे जिसे देखकर उन्हें सीताजी की उपस्थिति का भान हो। तभी उनकी दृष्टि तुलसी के पौधे पर पड़ी।

''रामायुध अंकित गृह, शोभा बरनि न जाइ
नव तुलसी का बृंत तहँ, देखि हरष कपि राइ।''

तुलसी को देखकर हनुमानजी को सीताजी की उपस्थिति का आभास हुआ। चरक, सुश्रुत या उनके पूर्ववर्ती आचार्यो ने इसके महत्व की जानकारी उस समय लिखे गये ग्रंथो द्वारा दी। धार्मिक मान्यताओं के आधार पर हर घर में तुलसी का पौधा लगाने की परंम्परा हैं। इसके औषधीय गुणों की जानकारी लगभग सभी को है और प्रयोजन होने पर लोग इसका उपयोग घरेलू नूस्खो मे करते हैं।

तुलसी के पौधे जहाँ होंगे वहां वातावरण में स्वच्छ एवं स्वास्थ्यप्रद प्राण वायु (आक्सीजन) पर्याप्त होगी। धार्मिक भावनाओं के कारण लोग उस स्थान को पवित्र और साफ सुथरा अवश्य रखते हैं। गन्दगी अनायास दूर रहती है और गन्दगी दूर रहने से वातावरण भी स्वच्छ और स्वास्थ्यप्रद होगा।

पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान से लोगों का मोह भंग हो रहा है। लोग पेड़ पौधों के औषधीय गुणों की और आकर्षित हो रहे हैं। चिकित्सा प्रसाधन, श्रृंगार सामग्री के क्षेत्र में लोगों का झुकाव वनस्पतियों की और होने लगा है। सर्दी, खाँसी, पेट की बीमारी में पहले से ही तुलसी का प्रयोग होता रहा है। प्रतिदिन सबेरे तुलसी के दो-चार पत्ते खाकर पानी पीने से रोग प्रतिरोधोंक्षमता बढ़ती है। आज लोगों की इस क्षमता में कमी आई है।

भगवान को प्रसाद चढ़ाते समय उसमे तुलसी के दोचार पत्ते आबश्य डालते हैं। ऐसा करने का धार्मिक कारण तो है ही वैज्ञानिक कारण भी है। तुलसी का काढा पीने से आश्यर्यजनक ताजगी और स्फूर्ति लाभ होता हैं।

शोध एवं अनुसंधान से तुलसी कें कई अज्ञात गुणों की जानकारी मिल रहीहै। संभव है भविष्य में लाख रोगों की एक दवा होगी तुलसी। भारतीय चिकिंत्सा विज्ञान का प्रतीक होगी तुलसी। संभव है भविष्य में पर्यावरण संरक्षण का प्रतीक होगी तुलसी। मेरे, आपके, सबके आंगन की तुलसी।

पर्यावरण समाचार

संजीव कुमार
मुख्यालय,भारतीय वनस्पति सर्बेक्षण, कोलकाता

1. अन्तराष्ट्रीय स्तर पर इस बात के प्रयास किए जे रहे है कि सियाचिन को शान्ति का क्षेत्र बनाया जाए। भारत पाकिस्तान के सैनिक जमावड़े को हटाया जाए। सैनिक जमावड़े से वहां के जलवायु में काफी बदलाव आया हैं। मानवीय गतिविधि के कारण सियाचिन ग्लेशियर पर निश्चित तौर पर असर पड़ा हागा। ग्लेशियर में हो रही गोलीबाड़ी हेलिकाप्टर उड़ाने और वहां तैनात सैनिकों के इस्तेमाल के लिए स्नो, मोबाइल वहां के मौसम और पर्यावरण दोनों को बदल देगा। पर्यावरणविदों का मानना है कि पर्यावरण की दृष्टि से इस 70 किलोमिटर लम्बे ग्लेशियर ने वैज्ञानिकों के समक्ष एक चुवौति पेश की है। ग्लोबल वार्मिंग के कारण हिमालय के इस ग्लेशियर का तेजी से क्षय हो रहा है। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी यह क्षेत्र चितांजनक क्षेत्र है। बड़ी संख्या में यहां सैनिकों की जानें जाती हैं।

2. ब्रिटेन का एक संस्थान सेन्टर फॉर हाईड्रोलोजी एण्ड इकोलोजी ने आशंका व्यक्त की है कि पृथ्वी में विशाल स्तर पर प्राणिजात/ वनस्पतिजात का विलोप हो रहा है। यह विलोपन 65 मिलियन वर्ष पूर्व विलोपन जैसा है जिसमें अतिकाय प्राणी डाइनोसोर भी मारे गए थे। ब्रिटेन में यह विलोपन काफी तेजी से हो रहा है। संस्थान का कहना है कि गत 600 मिलियन वर्ष में पृथ्वी ने 5 वृहत विलोपन झेलें हैं। ब्रिटेन में 71 प्रतिशत तितलियो कीं प्रजातियां 54 प्रतिशत पक्षियों की प्रजातियां का नाटकीय ढंग से विलोप हो चुका है वनस्पतिजात का भी यही हाल है।

3. सर्कस हमारे लिए मनोरंजन करने वाला साधन हो सकता है। पर सर्कस जंगली जानवरो के लिए कतई भी मनोरंजन का स्थान नही हैं। वहां उनको मारा पीटा जाजा हैं। पिंजरो में कैद रखा जाता हैं। सर्कस में जानवरों की जिन्दगी बेहद नारकीय होती हैं। ये सब जुल्म उन्हें प्रशिक्षण देने के लिए किया जाता है। कोईभी जानवर अपने आप साइकिल की सवारी नही कर सकता और न ही पीठ के बल खड़ा हो सकता है। वह तो चाबुको, इलेकट्रिक करन्ट और हथियारों की मार से बचने के लिए ऐसे कारनामें करता है और लोग तालिया पीट कर खुश होते है। पीपल फार

एथिकल ट्रीटमेंट आफ एनिमल्स के अनुसार भालू पिछली टांगो के बल पर खड़े होने के प्रयास में नाक तुड़वा बैठता है और उनकी हथेलियां भी जला दी जाती हैं। हाथियों की तीन टांगों को जंजीरो से बान्ध कर रखा जाता है। जानवरों को फर्शरहित छोटे पिंजरों में रखा जाता है जिनसे उन्हें किनारों से लटकने के लिए मजबूर होना पड़ता है।

4. फ्लाई एश (कोयले से निकलने वाली राख) पर्यावरण को बहुत नुकसान पहुंचता है। खासकर जिस जमीन पर फेंका जाता है वह भूमि बंजर हो जाती है। कोलाघाट (प० बंगाल) स्थित थर्मल प्लान्ट से निकलने वाले फ्लाई एश की वजह से रूपनारायण नदी का पानी प्रदूषित हो चुका है। जिसकी वजह से हिल्सा मछली के संख्या में काफी कमी आ गई है। इस प्रदुषण को रोकने के लिए फ्लाई एस को अन्य कार्यो में लगाना होगा। फ्लाई एश को ईट और सीमेंट में मिश्रण किया जा सकता है। यह ईंट और सिमेंट को ओर मजबुत कर देगा।

5. उत्तरी गोलार्द्ध के एक तिहाई से ज्यादा हिस्से में ग्रीनलैण्ड से लेकर साइबेरिया और दूसरे हिस्सों में भी वायुमण्डल के उपर पाई जाने वाली जीवन रक्षक ओजोन परत को लगातार नुकसान पहुँचा रहा है। इसका सबसे ज्यादा असर पृथ्वी के तापमान, मौसमी चक्र और जीव जन्तुओं के प्रतिरक्षा तन्त्र पर पड़ रहा है। जिसकी वजह से नई-नई बिमारियां चिकित्सकों के लिए पहेली बनकर उभर रही है। दूसरी तरफ हैजा, त्वचा रोग, मेलेरिया और जलजनित रोग बढ़ने लगे है। वैज्ञानिकों के मुताबिक दक्षिण ध्रुव के हिस्से में सबसे ज्यादा नुकसान पहॅचा है। पृथ्वी की सतह से 19 किमी से 46 किमी की ऊँचाई तक औसतन ओजोन परत पाई गई है। ओजोन परत सूर्य के पराबैगनी किरणों को सोख लेती है। पराबैंगनी किरणों से त्वचा केंसर की सम्भावनाए बढ़ जाती है। यह किरणे प्रतिरक्षा तन्त्र को भी प्रभावित करता हैं। पिछले छह साल में दो करोड़ चालिस लाख वर्ग किमीं हिस्से में ओजोन परत में छिद्र पाये गये है। ओजोन परत को सबसे ज्यादा नुकसान क्लोरोफ्लोरोकार्बन के अणुओं से हो रहा है। सीएफसी मानव निर्मित रासायनिक पदार्थ है जिसका उपयोग रेफ्रिजरेटरों, एअरकंडीशनरो, एयरसोल और कुछ खास तरह की पैकिगं मे काम आने वालें घोलों में किया जाता हैं।

6. कोलकाता की हवा में नाइट्रोजन के ऑक्साइड मुशकिलात बढ़ा देती है। तापमान के 20 डिग्रीके नीचे जाने से स्थिति और भी जटिल हो जाती है हवा में व्याप्त प्रदूषण के कण उपर नही उठ पाते। वे हवा के उसी सतह पर रह जाते है। जिसमें हम औसत रूप से सांस लेते है। इसके अतिरिक्त डीजलसे से चलने वाले वाहन इस महानगर के वातरवरण को और भी दूषित कर देते हैं। सीएनजी लेने के कारण दिल्ली की स्थिति अब कोलकाता से काफी अच्छी है। कोलकाता की हवा प्रदूषण की दृष्टि से काफी खतरनाक माने

जाने वाले नॉनपार्टिकल्स की संख्या भी बहुत अधिक पाई गई हैं।

7. थैलसेमियां रोगियों के लिए यह एक अच्छी खबर है कि गेहूँ के घास (Green shots of wheat grass) खाने से इस रोग से प्रभावित रोगियों में आश्चर्यजनक रूप से सुधार आया है। गेहूके घास को जूस के रूप मे सेवन करने से रोगी को रक्त बहुत कम बदलना पड़ता है। इसके सेवन से रोगी के हैमोग्लोबिन का स्तर भी बढ़ जाता है। इस रोग से प्रभावित 16 बच्चों पर किया गया जूस सेवन का परिक्षण काफी सफल रहा। रोगी को 15 दिन में एक बार रक्त बदलने की प्रक्रिया घट कर 3 माह में एक बार रह गई।

8. उड़िसा के बोलोंगीर जिला का टिटिलागढ़ शहर इस गर्मी में अधिक तापमान के लिए देश में चर्चा का विषय बना रहा। तापमानकी यह भीषण अधिकता सारे देश के लिए रहस्य बना रहा। राज्य सरकार द्वारा गठित विशेषज्ञ दल के अनुसार ग्रेनाइट पत्थरों की पहाड़ी, पानी की कमी तथा हरियाली के अभाव के कारण इस छोटे से शहर में प्रचण्ड गर्मी पड़ती है। यह छोटा सा शहर वृक्षहीन छोटे-छोटे पहाड़ों से घिरा हुआ है। इन छोटे छोटे पहाड़ों को बड़े-बड़े पहाड़ घेरे हुए है। जिससे यह पहाड़ गर्मी को बढ़ा देते है। सबसे बड़ी बात है कि इन पहाड़ों पर कोई पेड़ पोधा नही है। दूर से बिल्कुल नंगे नजर आते है। ये पहाड़ ताजा हवा को इलाके में आने से रोकते है जिससे क्षेत्र में व्याप्त गर्मी को बाहर निकलने का रास्ता नहीं मिल पाता। इस तरह तापमान को पारा एकदम शिखर पर चढ़ जाता है। इसके अतिरिक्त इस शहर में पानी का कोई अच्छा स्रोत भी नही हैं। सिर्फ एक नालानुमा नदी है। इसके आसपास ईट के भटटे भी है जो स्थिति और भी भयंकर बना देती है।

9. छत्तीसगढ़ में नागलोक के नाम से प्रसिद्ध जशपुर जिले में प्रति वर्ष बरसात की पहली फुहार के साथ करेत जैसे विषैल सांपो के काटने का सिलसिला आरम्भ हो जाता है। नागलोक का यह क्षेत्र, भौगोलिक स्थिति और जलवायु करैत के प्रजनन एवं पोषण के लिए उपयुक्त हैं। इस क्षेत्र में करैत और घोड़ा करैत नाम की सर्प प्रजातियां पाई ज़ाती हैं। इस क्षेत्र की मिटटी भूरभूरी होने के कारण करैत सर्प प्रजनन एवं निवास के अनुकूल हैं। मिटटी के भुरभुरी होने से उनमें दीमक का निवास होता है। करैत दीमक एवं इसके अण्डों को खाकर अपनी भूख मिटाता है। मादा करेत दीमक की बांबी में रहकर अण्डे देते है। जब बरसात की पहली फुहार जमीन पर पड़ती है तब आर्द्रता और उमस बढने के कारण नन्हें करैत इन्ही दीमक की बांबियो से निकलकर खेत, मैदान, और रिहायशी इलाकों में ठंडा और खुश्की की तलाश में आ जाते है और सर्प दंश की घटनाओं में वृद्धि होना प्रारम्भ हो जाता है।

10. 'भारत स्टेज-टु या 'यूरो टू' के तहत कोलकाता

महानगर को वाहनो से होने वाले प्रदूषण को रोकने के लिए गैसों की मात्रा कितनी कम होनी चाहिए अदालत ने इसका उल्लेख किया है। पेट्रोल से चलने वाले वाहनों के लिए धुंए में कार्वनमोनोक्साइड 2.2 ग्राम, हाइड्रोकार्बन व नाइट्रोजन अक्साइड 0.5 ग्राम, प्रति किलोमीटर होनी चाहिए। डीजल के वाहनों में यह मात्रा कार्बनमोनोक्साइड 1से डेढ़ ग्राम, हाइड्रोकार्वन व नाइट्रोजन 0.7 ग्राम से 1.3 ग्राम तक होनी चाहिए। प्रदूषण की रोकथाम के लिए कोलकाता उच्च न्यायालय ने 1997 में एक सौ से अधिक सीसटीसी के वाहनों को चलाने से रोकने का आदेश दिया था। राज्य सरकार द्वारा गठित समिति ने 10 वर्ष से अधिक पूरानी गाड़ियों को चलाने पर प्रतिबन्ध सिफारिश की थी। इस राज्य में भी भारत स्टेज टू के नियमों को लागू करना आसान नही। यहां आधारभूत ढांचे का अभाव हैं। सीएनजी की सहज उपलब्धता नही है। रानीगंज इलाके में मिथेन गैस का प्रचुर भण्डार है पर निकट भविष्य में इसका वाणिज्यिक व्यवहार के आसार नही हैं। पेट्रोलसे चलने वाली वाहनों में थोड़ा यान्त्रिक परिवर्तन कर प्रदूषण को कम किया जा सकता हैं। पर डीजल वाहनों पर नही। महानगर में एलपींजी फिलिंग स्टेशन भी नहीं है। गैस से वाहन चलाना खर्चीला भी हैं। वाहनों को परिवहन विभाग के नियमों का अनुसरण करना होगा। मसलन वाहनों के टैंकर एक्सप्लोसिव विभाग के अनुमोदन पर बदले जाएगें। अन्य उपकरणों की अनुमति पुणे की ओटोमोबाइल रिसर्च एसोसियेशन ऑफ इण्डिया से लेनी होगी। महानगर में घरेलु गैस के सिलिडंर से चलती है जो अवैध एवं खतरनाक है। वेसे घरेलू गैस से पेट्रोल से चलने वाहले वाहनों में थोड़ा परिवर्तन कर चलाया जा सकता है। 17 के. जी. गैस एक एम्बैस्डर कार सौ कि. मी. व मारूति साढ़े तीनसौ किलामीटर दूरी तय कर सकता है। उच्च स्तर का रख्यणाय भी प्रदूषण को कम कर सकती है। पर 11 लाख रूपए की कीमत के 'भारत स्टेज टू' की नई बसे खरीदना कतई संभव नहीं । इसके अलावा नए नियमों के अनुसरण में जो खर्च होगा उसकी पूर्ति फिर किराए बढ़ा कर ही करनी पड़ेगी।

11. भारत प्रदूषण की रोकथाम के लिए चरणबद्ध तरीके से वाहनों में युरो सिस्टम लागु करने में समर्थ नहीं हैं। यह बात दिल्ली स्थित सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट की निर्दशक ने कहा। उन्होने कहा कि वाहनों को युरोमानक में बदलने के लिए यहां पर्याप्त संसाधन मौजूद नही है। उन्होंने कहा कि भारत एक गरीब देश है और ऐसे में यहां यूरोपियन मॉडल का अनुसरण करना असंभव है। वाहनों में चरणबद्ध यूरो परिवर्तन में काफी खर्च होगा। उन्होनें कहा कि यहां पुरानी गाड़ियों के मलबों के लिए ढांचा उपलब्ध नहीं है। उन्होने कहा कि विदेशों में लोग पर्यावरण व विकास को एक दूसरे का पूरक मानते है, जबकि भारत में लोग इसे अलग अलग मानते है। उन्होंने कहा कि भारत का कानून लोगों को स्वच्छ पर्यावरण के लिए प्रोत्साहित नही करता, बल्कि इससे छेड़छाड़

करने पर दंडित करने के लिए प्रस्तुत रहता है।

12. पर्यावरण-विद व वैज्ञानिक डॉ सूनीता नारायण ने पर्यावरण से संबन्धित कुछ चूनौतिपूर्ण विषयों पर प्रकाश डालते हुए कहा कि आज हम लोग इकोलोजिकल पॉवरटी की तरफ मूड़ रहे है। उन्होंने कहा कि इस बार के लोकसभा चुनावों की अहमियत जल नीति के कारण बढ़ी है। भारत में 8760 घंटे की बारिश के जल में केवल 100 घंटे का उपयोग हो पाता है। 90 प्रतिशत जल तल के जल से उपयोग करते हैं। 60 प्रतिशत जल कृषि में उपयोग होता हैं। पूरे विश्व में प्रति 10 मीटर के हिसाब से जल का स्तर घट रहा है। एक अन्य गंभीर विषय वायुदूषण पर डा. नारायण ने कहा कि दिल्ली व कोलकाता में गाड़ियों द्वारा वायुप्रदूषण से उत्पन्न बीमारियों में फेंफड़े की तकलीफ 80 प्रतिशत है। आने वाले 5 वर्षो में अति सूक्ष्म कण त्वचा के माध्यम से शरीर में प्रवेश केरेगें। प्रसिद्ध बंगला लेखिका महाश्वेता देवी ने पालामों के जंगल गुजारे अनुभव को बताया। उन्होंने बताया कि किस तरह पुरूलिया के आदिवासियों ने अपने प्रचलित ज्ञान के अनुसार जल की कमी पूरी की।

उत्तर प्रदेश एवं मध्य भारत में पायी जाने वाली बाँसों की जातियाँ

बी० के० शुक्ल, बी० के० सिन्हा, जी० पी० सिन्हा एवं के० पी० सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

उत्तर प्रदेश भौगोलिक रूप से देश के 23^0 52'–30^0 24' उत्तर अक्षांश तथा 77^0 05 – 84^0 38 पूर्व देशान्तर पर स्थित हैं। यह प्रदेश राजनैतिक रूप से उत्तर में नेपाल, दक्षिण में मध्य प्रदेश, पूर्व में बिहार एवं दक्षिण पश्चिम में दिल्ली, हरियाणा एवं राजस्थान से घिरा हुआ है। प्रदेश 71 जिलों में विभाजित है। प्रदेश को भौगोलिक, मृदा संरचना एवं जलवायु के आधार पर चार भागों जैसे तराई क्षेत्र गंगा-यमुना का मैदानी क्षेत्र, विन्ध्य क्षेत्र एवं अर्ध रेगिस्तानी क्षेत्र में विभाजित किया गया है।

इसी प्रकार मध्य भारत के अन्तर्गत देश के दो अन्य राज्य मध्य प्रदेश एवं छत्तिसगढ़ के भाग आते हैं। भौगोलिक रूप से ये राज्य $17^0$48' - $26^0$52' उत्तर अक्षांश एवं 74^0 02' - 84^0 24' पूर्व देशान्तर पर स्थित हैं। इसका भौगोलिक क्षेत्रफल लगभग 463452 वर्ग कि.मी. है। ये दोनों राज्य राजनैतिक रूप से उत्तर-पश्चिम में राजस्थान, उत्तर-पूर्व में उत्तर प्रदेश एवं बिहार, दक्षिण-पूर्व में उड़िसा एवं दक्षिण में आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र तथा दक्षिण पश्चिम में गुजरात प्रदेश से घिरा हुआ है। मध्य भारत में विन्ध्य एवं सतपुरा की पहाड़ियाँ फैली हुई हैं। पचमढ़ी की धूपगढ़ चोटी, क्षेत्र की सबसे ऊँची पहाड़ी है। जिसके ऊचाई लगभग 1450 मीटर है। मध्य भारत में पचमड़ी एवं अमरकंटक (प्रस्तावित) जीवमण्डल क्षेत्र आते हैं।

जैव विविधता के दृष्टिकोण से उत्तर प्रदेश एवं मध्य भारत बहुत ही समृद्ध प्रदेश हैं। यहाँ पर पुष्पीय पौधों की लगभग 2500 प्रजातियां उगती हैं। उपयोगिता के आधार पर यहाँ पाये जाने वाले पौधों को निम्न वर्गो में बाँटा जा सकता है जैसे औषधीय पौधे, इमारती लकड़ी के वृक्ष, सजावटी पौधे, आर्थिक उपयोगी पौधे, गोंद वाले पौधे आदि।

प्रस्तुत लेख में आर्थिक दृष्टिकोण से उपयोगी 'बाँस' की प्रजातियों के बारे में विस्तृत जानकारी दी जा रही है, क्योंकि बाँस मनुष्य के लिए बहुत ही उपयोगी पौधा है। बाँसों का मनुष्य जीवन से बहुत पुराना सम्बन्ध रहा है। जन्म से लेकर मृत्यु तक मनुष्य किसी न किसी रूप से बाँसों का उपयोग अपने

दैनिक कार्यो में करता चला आरहा है। इसलिए बाँसों को गरीबों की 'इमारती लकड़ी' भी कहा जाता है। इसके अतिरिक्त बाँस मनुष्य के मूलभूतदैनिक जीवन की आवश्यकता जैसे भोजन, वस्त्र, कागज एवं मकान बनाने के लिए भी प्रयोग में लाया जाता है। साथ ही यह आजकाल बहुत से कुटीर उद्योगों में कच्चे माल की तरह उपयोग में लाया जाता है।

बाँस पोएसी कुल का सदस्य है। विश्व में इसकी लगभग 45 वंश एवं 550 जातियाँ पायी जाती है। इनमें से 23 वंश एवं 140 जातियाँ भारतवर्ष में उगती हैं। ये प्रमुख रूप से उत्तर-पूर्व के राज्यों में बहुतायात से पायी जाती हैं। उत्तर प्रदेश एवं मध्य भारत में बाँसों की 9 जातियाँ एवं 4 वंश पाये जाते हैं।

बासों की पहचान करना एक कठिन कार्य है। इसका प्रमुख कारण है बाँसों में फूल एवं बीज का प्रत्येक वर्ष न बनाना। इनमें पुष्पन प्रायः 50-120 वर्षो के अन्तराल में ही होता है। अधिकाँश बाँसों की प्रजातिया फूल एवं बीज देने के बाद सूख जाती हैं एवं इस प्रकार उस प्रजाति का जीवन चक्र समाप्त हो जाता है। वैज्ञानिक तरीके से किसी भी पुष्पीय पौधे के पहचान के लिए एवं फल का होना अनिवार्य है। इसी कारण बाँसों की सही पहचान एवं नामकरण करना एक कठिन कार्य है। यहाँ पर बाँसों की पहचान के लिए पुष्प एवं बीज के अतिरिक्त पौधों में पाये जाने वाली कायिक अवस्था जैसे कल्म शीथ एवं तने के गुणों को महत्व दिया जाता है। उपरोक्त संरचनायें सभी प्रजातियों में किसी भी समय सरलता से देखी जा सकती हैं। पहचान की दृष्टि से कल्म शीथ (चित्र सं.1) एक प्रमुख भाग है। कल्म शीथ दो गाँठों के मध्य को ढके रहती है। इसके निम्नलिखित प्रमुख भाग होते हैं।

ब्लेड : कल्म शोथ के ऊपरी हिस्से (भाग) को ब्लेड कहा जाता है।

लिग्यूल व आरिकिल : मुख्य शोथ एवं ब्लेड कर बीच में तने के अन्दर की ओर झिल्लीदार या रोयेंदार भाग पाया जाता है। इसे लिग्यूल कहते हैं एवं इसके किनारे की तरफ बाहर निकले भाग को आरिकिल कहते हैं।

उत्तर प्रदेश एवं मध्य भारत में पाये जाने वाले बाँसों के प्रमुख वंशों एवं जातियाँ एवं उनके वितरण को तालिका – में दर्शाया गया हैं।

तालिका – 1 : बाँसों के प्रमुख वंश एवं जातियाँ

क्रम सं.	वंश	जातियाँ	वितरण		
			उ. प्रदेश	मध्य प्रदेश	छत्तिसगढ़
1. *बम्बूसा*	*अरून्डिनेसिया*	+	+	+	
		टेरिस	–	+	+
		न्यूटेन्स	–	–	+
		वलगेरिस	+	+	+
		बालकोआ	+	–	–
2.	*डेन्ड्रोकैलमस*	*स्ट्रिक्टस*	+	+	+
		जाएगेन्सियस	+	+	+
3.	*जायेगीन्सोक्लोआ*	*हसकरलियाना*	–	+	+
4.	*साइजोस्टैकियम*	*परग्रेसली*	–	–	+

उपरोक्त तालिका में पायी जांने वाली बाँसों की जातियों को प्राकृतवास में पहचानने के लिए प्रमुख लक्षणों को यहाँ पर विस्तार से दिया जा रहा है, जिससे उनकी पहचान एक साधारण व्यक्ति भी कर सके।

1) **बम्बूसा अरून्डिनेसिया** – पौधे का तना 16-35मीटर लम्बा एवं 15-18 से. मी. मोटा होता है। तने के नीचे की गांठों में काँटे एवं कल्म शीथ पीले रंग की होती है। कल्म शीथ पर बाहर की ओर सुनहरे रोयें पाये जाते हैं। इसकी ब्लेड तिकोने आकार की लगभग 10 से. मी. लम्बी, बाहर की तरफ चिकनी एवं अन्दर घने भरे रंग के रोयें पोयें जाते हैं। नये तने की ऊपरी सतह पीले–हरे रंग की तथा अग्र भाग चौड़ा होता है। पुस्पन जनवरी-मार्च महीने में होता हैं।

2) बम्बूसा टेरिस – पौधे का तना गहरे हरे रंग का, लगभग 30 मीटर लम्बा एवं 7 से.मी. मोटा होता है। इसकी कल्म शीथ बाहरी सतह पर चिकनी, 20-25 से. मी. लम्बी एवं इतनी ही चौड़ी होती है। ब्लेड 10-15 से. मी. लम्बा, तिकोने आकार का तथा रोंयेदार होता है। ब्लेड के किनारे पर आरिकिल होता है जिसकी सतह खुरदुरी एवं रोमिल होती हैं जो बाद में गिर जाती हैं। पुष्पन जनवरी–फरवरी माह में होता है।

3) **बम्बूसा न्यूटेन्स** – इस पौधे का तना हल्के हरे रंग का, 7-14 मीटर लम्बा एवं 4-8 से. मी. तक मोटा होता है। तने के गाँठ के नीचे एक सफेद रंग की छल्लानुबा भाग होना इसकी मुख्य पहचान है। कल्म शीथ 15-20 से. मी. लम्बी तथा इस पर बाहर की ओर छोटे काले रोयें पाये जाते हैं। इसका आरिकिल पैटर–पिलर कीड़े की भाँति खुरदुरा होता है। पौधे का नया तना गहरे भूरे रंग का तथा अग्र भाग हरा होता है। पुष्पन अगस्त-फरवरी माह में होता है।

4) **बम्बूसा वलगेरिस** – इस पौधे का तना 6-15 मीटर लम्बा एवं 5-10 से. मी. मोटा होता है। तने में हरे एवं पीले रंग की पट्टियाँ एवं गाँठ के ऊपर भूरे रंग के रोयें पाये जाते है। कल्प शीथ15-25 से. मीं लम्बा तथा 17-23 से. मी. चौड़ा होता है। शीथ का ऊपरी भाग रोमिल होता है। ब्लेड 5-15 से. मी. लम्बा, अग्र भाग तिकोने आकार का एवं रोयेदार होता है। पुष्पन नवम्बर–अप्रैल माह में होता है।

5) **बम्बूसा बालकोआ** – इस पौधे का तना 15-25 मीटर लम्बा तथा 7-15 से. मी. मोटा होता है। तना गाढ़े हरे रंग का होता है। कल्म शीथ दो तरह की होती है। तने के नीचे के तरफ पायी जाने वाली कल्म शीथ छोटी एवं चौड़ी होती है तथा बाहर की तरफ रोयेंदार होती है। तने के ऊपरी भाग में पाये जाने वाली कल्म शीथ 25-30 से. मी. लम्बी तथा चिकनी होती हैं। ब्लेड 10-20 से. मी. लम्बा व नुकीला होता है तथा इसमें नीचे की ओर अत्यधिक रोयें होते हैं। पुष्पन जनवरी–अगस्त माह में होता है।

6) डेन्ड्रोकैलेमस जाएगेन्सियस – इस पौधे का तना कठोर होता है तथा यह 25-30 मीटर लम्बा व 15-25 से. मी. मोटा होता है। कल्म शीथ 40-60 से. मी. लम्बा एवं लगभग इतना ही चौड़ा होता है। कल्म शीथ के बाहरी सतह पर सुनहरे भूरे रंग के रोयें पाये जाते हैं। इस पौधे में आरिकल नही पाया जाता हैं। ब्लेड तिकोने आकार का 15-35 से. मी. तक लम्बा होता है। पुष्पन नवम्बर–मार्च माह में होता है।

7) डेन्ड्रोकैलेमस स्ट्रिक्टस – इस पौधे का तना कठोर, 6-20 मीटर लम्बा व 2.5-7 से. मी. मोटा होता है। पूर्ण रूप से विकसित तना हल्के पीले रंग का होता है। कल्म शीथ 7-30 से. मी. लम्बा, सुनहरे भूरे रंग के रोयें से ढका रहता है। ब्लेड तिकोने आकार का होता है तथा बाहर और अन्दर की सतहें रोयेंदार होती हैं। इसका नया तना भूरा एवं रोयेंदार होता है तथा अग्र भाग छोटा होता है। इसमें आरिकिल नहीं पाया जाता है। पुष्पन अक्टूबर-मार्च माह में है।

8) जायगेन्सोक्लोआ हसकरलियाना – इस पौधे का तना 10-15 मीटर लम्बा व 5-10 से. मी. मोटा होता है। कल्म शीथ 15-40 से. मी. लम्बी एवं इसकी बाहरी सतह घने रोयेंदार होती है। आरिकिल हरे रंग की व अन्दर की तरफ रोयेंदार होती है। ब्लेड तिकोना एवं भालाकार होता है। नये तने के अग्र भाग में चमकीले काले रंग के रोयें पाये जाते हैं व अग्र भाग नुकीला होता है। पुष्पन की जानकारी उपलब्ध नहीं है।

9) साइजोस्टैकियम परग्रेसली – यह पौधा झाड़ीनुमा बाँस है। इसका तना 10-12 मीटर लम्बा एवं 5-7 से मी. चौड़ा होता है। कल्प शीथ 10-15 से. मी. लम्बी एवं बाहरी सतह काले रंग के रोयें से ढ़की रहती हैं। ब्लेड कप के आकार का होता है जो 5 से. मी. लम्बा भीतरी सतह रोयेदार होती है। आरिकिल सफेद रोयें से ढ़का रहता है। पौधे का नया तना सुनहरे पीले रंग का होता है। पुष्पन की जानकारी उपलब्ध नहीं हैं।

उपरोक्त बाँसों की 9 जातियों को कल्म शीथ की संरचना एवं आकार (चित्र संख्या 2) के आधार पर तालिका–2 में दर्शाये गये निम्न लक्षणों के द्वारा भी पहचाना जा सकता हैं।

बाँसों को उगाने की विधि : बाँसों की नयी पौध को लगाने के लिये सामान्यतया तीन तरह की विधियों का प्रयोग किया जाता है।

(क) बीजों के द्वारा
(ख) तने की कलम विधि द्वारा
(ग) ऊतक संवर्धन विधि द्वारा

बीज बोने के लिये जून से जुलाई माह की अवधि में इसकी क्यारी बना कर क्यारियों में बीज को बो सकते हैं। अत्यधिक वर्षा होने पर बीज को बचाने हेतु पत्तों से क्यारी को ढक देते हैं। बीज रोपण के एक सप्ताह पश्चात पौधे अंकुरित हो जाते हैं जिसे पालिथिन की थैलियों में रोप कर पौधों की नर्सरी तैयार की जाती हैं।

तने की कलम विधि के अन्तर्गत स्वस्थ तने को जुलाई–अगस्त माह में गाँठ सहित एक–एक फुट के टुकड़े बनाकर उन्हें पालिथिन की थैलियों में रोप देते हैं। इसमें समय–समय पर पानी डालते रहते हैं। कुछ समय पश्चात तने की गाँठों से नये पौधे निकल आते हैं।

ऊतक संवर्धन विधि द्वारा भी बाँसों की नर्सरी तैयार की जाती हैं। इसमें प्रयोगशाला में बाँसों की किसी भी प्रजाति का ऊतक लेकर बाँस के नये पौधे तैयार किये जा सकते हैं।

बाँसों की उपयोगिता : अपने देश में बाँसों का अत्यधिक उपयोग किया जाता है। इसका उपयोग दैनिक जीवन एवं औद्योगिक संस्थानों में कच्चे माल की तरह से होता है। इन उपयोगों के विषय में नीचे संक्षेप में दिया जा रहा हैं :

1) झोपडियों, टोकरियाँ, चटाईयाँ आदि बनाने के लिये।
2) कागज बनाने के लिये।
3) बाँस के तनों से प्राप्त होने वाला बंशलोचन औषधोपयोगी होता है।
4) बाँस की पत्तियों का उपयोग रक्त शोधक के रूप मे किया जाता है।
5) धवल रोग, कीटनाशक, स्त्रावरोधी दवा के रूप में भी इन्हें प्रयुक्त किया जाता है।

6) कुछ जातियां बगीचों की सुन्दरता बढ़ाने के लिये भी लगाई जाती हैं।

7) अचार के रूप में प्रयोग किया जाता है।

8) बाँस की पत्तियाँ हाथियों का प्रिय भोजन है।

9) बाँस की नई कोपल ख़ाने से हृदय रोग एवं उच्च रक्तचाप में अत्यधिक लाभ होता है।

तालिका – 2

बाँश की जातियाँ	पहचान के प्रमुख लक्षण
1) *बम्बूसा अरून्डिनेसिया*	तने के निचली गॉठो मे 2–3 कँाटे होना। कल्म शीथ पीले रंग का एवं अग्र भाग भालाकार होता हैं।
2) *बम्बूसा टेरिस*	कल्म शीथ की लम्वाई एवं चौड़ाई बराबर होती है। बाहरी सतह में सफेद रोयें पाये जाते हैं।
3) *बम्बूसा न्यूटेन्स*	कल्म शुथ आकार में असामान्य एवं तिरछी होती हैं।
4) *बम्बूसा वलगेरिस*	कल्म शीथ लम्बाई एवं चौड़ाई में लगभग बराबर होती है। आरिकिल रोयेंदार होता है।
5) *बम्बूसा बालकोआ*	कल्म शीथ दो प्रकार के होते हैं। तने के नीचे पायी जाने वाली रोयेदार होती हैं एवं ऊपर की कल्म शीथ चिकनी होती है। ब्लेड छोटा व तिकोना होता है।
6) *डेन्ड्रोकैलेमस जायगेन्सियस*	कल्म शीथ 40–60 से. मी. लम्बी, बाहरी सतह पर सुनहरी रोयेंदार होती हैं एवं लिग्यूल की और लहरदार होती है।
7) *डेन्ड्रोकैलेमस स्ट्रिक्टस*	कल्म शीथ 7.5–30 से. मी. लम्बी बाहरी सतह पर सुनहरे भूरे रंग के रोयें जाते हैं।
8) *जागेन्सोक्लोआ हसकरलियाना*	कल्म शीथ 15–40 से. मी. लम्बी, बाहरी सतह घने रोयेंदार होती हैं। लिग्यूल ऊपर की ओर दाँतदार होता है।
9) *साइजोस्टैकियम परग्रेसली*	कल्म शीथ 10–15 से. मी. लम्बी, बाहरी सतह पर काले रंग के रोयें पायें जाते हैं।

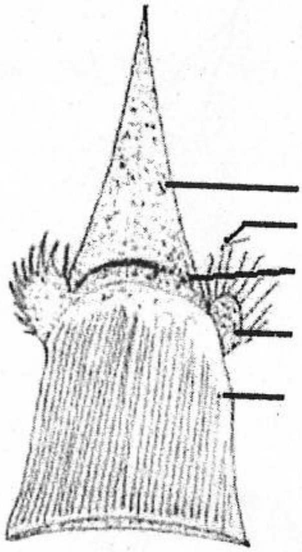

चित्र संख्या 1 : कल्म शीथ

तक खंडित होते हैं। खंडों की संख्या 80-100 तक होती हैं जो ऊपर की ओर थोड़ी दूर तक पतली होकर अंत में दो भागों में बँट जाता हैं। शिखर पर घना सूच्याकार पुष्प गुच्छ 4.5-5.5 से. मी. लम्बा तथा बहुशाखीय होता हैं। नीचे की शाखा लगभग एक मीटर से अधिक लम्बी, ऊपर की ओर सूच्याकार। फूलों व फलों के साथ नीचे की शाखा 30 से.मी. तक मोटी होती हैं। फूलों की अंतिम शाखाएँ 10-15 से मी. लम्बी होती हैं। नई शाखाओं का रंग हलका पीला होता हैं। ये द्विलिंगी होते हैं। 5-7 फूलों के गुच्छों में हर फूल लगभग 4.5 मि. मी., पंखुड़ियाँ 2-3 मि. मी. लम्बी होती हैं। आकार नाव की तरह व गोलाकार होता है। पुंकेसर 4 मि. मी. जयांग 2.5 मि. मी, गोलाकार फल का व्यास 2 से मी एक बीजी, रंग हलका पीला या भूरा तथा चिकना परत जो सूखने पर झुर्रीदार हो जाता हैं। गोलाकार बीज का व्यास लगभग 1.5 से. मी.।

पक्षी व चमगादड़ फल को खाते हैं जिससे भारतीय वनस्पति उद्यान के आस पास भी यह वृक्ष पाया जाता हैं। पहले यह वृक्ष बंगाल में बहुतायत में पाया जाता था। आजकल कम हो गया हैं। बंगला नाम प्रचलित होने से अनुमान है कि यह लोगों की जानकारी में था तथा इसका उपयोग विभिन्न रूप में होता था। आज भी उपयोग होता है।

ताड़ कुल की यह जाति भारत (प. बंगाल, अंडमान द्वीप समूह), म्यान्मार, मलेशिया, इण्डोनेशिया, पपुआ न्यू गिनिया, फिलीपीन, पूर्वोत्तर आस्ट्रेलिया में नदी किनारे निम्न भूमि तथा दलदल में उगता हैं। इसे पानी की चरम सीमा भी बर्दाश्त करने की क्षमता हैं।

उत्पत्ति : यह बागानो, पार्कों व अन्य जगहों पर लगाई जाती हैं। साधारणतया इसको बीज से ही लगाते हैं। वृक्ष के नीचे व आसपास असंख्य पौधे देखे जा सकते हैं।

उपयोग : सूखी हुई पत्तियों से छप्पर, पत्तों के डंठल से रस्सी, नरम पत्तियों से झापी, झाड़ू , बस्ते, टोपी चटाई आदि बनते हैं। तने के मध्य भाग से खाद्य सत्व (स्टार्च)मिलता हैं।

युलोफिया न्युडा *Eulophia nuda* Lindl.

वुडफोर्डीया फ्रुटीकोसा *Woodfordia fruticosa* (L.) Kurz

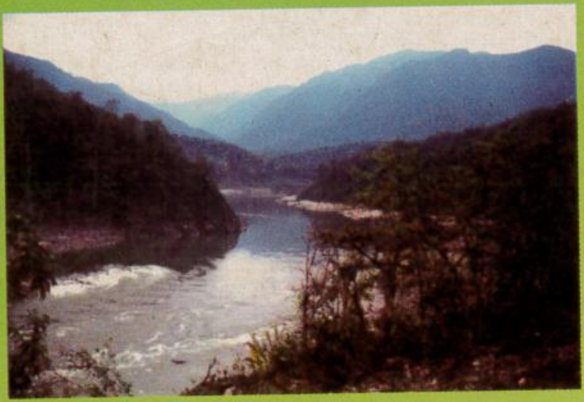

सियांग नदी
मौलिंग राष्ट्रीय उद्यान

चित्र– बुकताम

उद्यान का मुख्यालय,
जैं गिंग
अपर सिंयाग

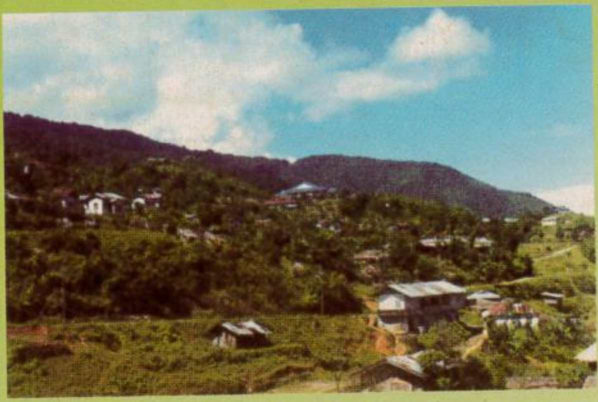

चित्र– अम्वरीष

उद्यान का इगोंग बेस कैम्प
सर्वेक्षण दल के साथ

जेगिंग, सिंयाग में स्थानीय अर्धपालतु
(Semi domestic animals) जानवर मिथुन

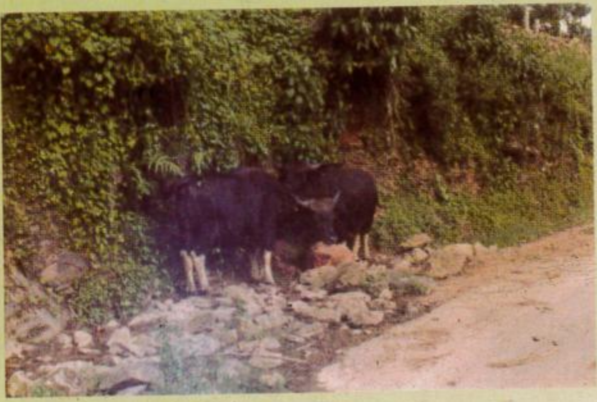

चित्र– अम्वरीष